मिथिला राज्य : एक ऐतिहासिक तथ्य



डा० शिव कुमार मिश्र

मिथिला राज्य : एक ऐतिहासिक तथ्य

MITHILA STATE : A HISTORICAL FACT

(पृथक मिथिला राज्य की आवश्यकता क्यों ?)

लेखक :

डा० शिव कुमार मिश्र

एम०ए० (इतिहास) एम०ए० (प्राचीन भारतीय एवं एशियायी अध्ययन)

पी-एच०डी० (पटना वि०वि०)



सावित्री प्रकाशन

पटना

वर्ष : 2002

प्रकाशक :



सावित्री प्रकाशन
पटना - 800 001
दूरभाष : 522480

सहयोग राशि : 20 रुपये मात्र

सम्पर्क :

डा० शिव कुमार मिश्र
द्वारा-सावित्री मेडिको
छक्कन टोला, उत्तरी मंदिरी
पटना - 800 001

मुद्रक व प्रकाशक : **AARESS**, Printers & Publishers, Station Road, Patna
फोटो कम्पोजिंग : ए. एस. कम्प्यूटर्स, पटना-800 003

MITHILA STATE : A HISTORICAL FACT

By Dr. Shiva Kumar Mishra

Price : Rs. 20/-

परमपूज्य बाबूजी
पं० श्री महादेव मिश्र
को
समर्पित !

मेरी ओर से

मिथिला के गौरवशाली इतिहास, संस्कृति एवं परम्परा के अध्ययन के क्रम में हमेशा ही एक बात हमें उद्वेलित करती रहती है कि जो मिथिला (विदेह) भारत का सबसे प्राचीन एवं शक्तिसंपन्न राज्य था, जहाँ का राजदरबार सांस्कृतिक एवं दार्शनिक क्रिया-कलापों का केन्द्र-बिन्दु हुआ करता था, जहाँ भारतीय दर्शन की अधिकांश विधाओं का जन्म हुआ, जहाँ देश के विभिन्न भागों से आये ऋषि-मुनियों, गुरु-शिष्यों एवं मीमांसकों को आश्रय एवं संरक्षण प्रदान किया जाता रहा, जहाँ गणतंत्र का जन्म हुआ, जहाँ आर्थिक समृद्धि रही, जहाँ विविध प्रकार के उद्योग-धंधे फलते-फूलते रहे और जहाँ की संस्कृति एवं परंपरा अपनी विशिष्टता के लिए संसार में आज भी अनूठी है, आज उसी भू-भाग का प्रत्येक पक्ष दुर्दशा एवं बर्बादी का शिकार क्यों बन गया ?

प्राचीन काल से लेकर भारत की स्वतंत्रता से पूर्व तक इस क्षेत्र की अपनी अलग पहचान रही । स्वतंत्रता से पूर्व यहाँ की जो सांस्कृतिक एवं आर्थिक संरचनाएँ थी, वह स्वतंत्रता के बाद से ही पतनोन्मुख होने लगा और पांच दशक में ही यहाँ सर्वत्र कंगाली की स्थिति दृष्टिगोचर होने लगी। इस दुर्दशा एवं कंगाली का मूल कारण है- स्वतंत्रता के समय मिथिलांचल को पृथक राज्य का दर्जा न मिलना ।

कुछ बातें हमारे मन को सदैव आंदोलित करती रहती है कि जब मिथिला के पास एक पृथक राज्य के लिए सारी योग्यताएँ थी तो स्वतंत्रता के समय इसे अलग राज्य का दर्जा क्यों नहीं दिया गया ? क्या इसी के दुष्परिणाम से इस क्षेत्र की बर्बादी तो नहीं हुई ? इसकी दुर्दशा के लिए जिम्मेवार कौन लोग रहे हैं ? क्या मिथिलांचल की इस कंगाली के लिए राजनेताओं एवं जन-प्रतिनिधियों को ही पूर्णतः दोषी नहीं माना जाय ? क्या उनकी संवेदनशीलता मर तो नहीं गयी? क्या वे इस क्षेत्र का शोषण कर स्वयं को सुसम्पन्न नहीं बनाते चले गए ? इस दुर्दशा से उबरने के उपाय क्या है ? क्या इसका एक मात्र निदान पृथक मिथिला राज्य का निर्माण तो नहीं ? आदि-आदि । और पृथक मिथिला राज्य निर्माण के लिए यहाँ के जनप्रतिनिधि

यों को पूर्वाग्रह तथा निजी स्वार्थ से ऊपर उठना ही होगा । कुछ संगठनों द्वारा पृथक मिथिला राज्य की मांग निश्चित रूप से स्वागतयोग्य कदम है ।

मिथिला की दुर्दशा से मर्माहत मेरी संवेदनशीलता को सुप्रसिद्ध अधिवक्ता पं० ताराकान्त झाजी ने गति प्रदान करते हुए **मिथिला राज्य : एक ऐतिहासिक तथ्य** विषय पर एक संक्षिप्त संदर्भ ग्रंथ तैयार करने की मुझे प्रेरणा दी । इसके लिए वे बार-बार प्रेरित भी करते रहे । मैं उनका आभारी हूँ । प्रस्तुत शोध ग्रंथ में मैंने उन साक्ष्यों को संक्षिप्त रूप से रखने का प्रयास किया है जिनके द्वारा यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल से मध्य काल तक मिथिला एक शक्तिशाली राज्य था तथा आर्थिक दृष्टि से भी एक समृद्ध राज्य था। आर्थिक समृद्धि से संबंधित प्रमाण उन बातों का मुँहतोड़ जबाव है जिनमें कहा जाता है कि मिथिला में बाढ़, बालू, सुखाड़ आदि के कारण आर्थिक विकास की संभावना नगण्य है ।

मेरे गुरुजी डॉ० जयदेव मिश्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग (पटना विश्वविद्यालय) का मैं आभारी हूँ जिन्होंने मुझे मिथिला पर शोध कार्य करने की प्रेरणा दी । प्रस्तुत 'शोध कार्य' में मुझे श्री प्रणव कुमार चौधरी, प्रधान संवाददाता, टाइम्स ऑफ इंडिया, पटना एवं सिन्हा लाइब्रेरी तथा के० पी० जयसवाल शोध संस्थान के कर्मचारियों का मदद मिला है- उनका मैं आभारी हूँ । मेरी पत्नी कल्पना मिश्र तथा अनुज मनोज कुमार मिश्र के सहयोग के बिना इस कार्य को पूरा करना संभव नहीं था ।

मेरे मित्र श्री रवि संगम की सहायता के बिना इस कार्य का प्रकाशन इतने कम समय में संभव नहीं था इसके लिए मैं उन्हें विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ । पुस्तक में त्रुटि के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ तथा विद्वत्जनों से उचित सलाह की कामना रखता हूँ ।

पटना
कार्त्तिक धवल त्रयोदशी
17.11.2002.

शिव कुमार मिश्र

मिथिला राज्य : एक ऐतिहासिक तथ्य

मिथिला राज्य की महानता एवं प्राचीनता

मिथिला भारतीय इतिहास के प्राचीनतम राज्यों में से एक है । इसका एक गौरवशाली अतीत है जिसपर किसी भी सभ्य राष्ट्र तथा देश को गर्व होगा । प्राचीन मैथिल तथा उनके शासकगण जिस प्रकार अपनी विद्याप्रेम के लिए प्रख्यात थे, उसी तरह वीरता एवं साहस के लिए भी प्रशंसनीय थे। जिस प्रकार वे सांसारिक अधिकारों के धनी थे उसी तरह मानसिक तथा आध्यात्मिक स्थायी निधि के अधिकारी भी थे। उनकी न्याय व्यवस्था सभी क्षेत्रों के निवासियों के बीच उत्कृष्ट मानी जाती थी। जिसका उन्होंने अपने शासन प्रभाव के द्वारा विस्तार किया । करीब तीन हजार वर्ष बीत जाने के बावजूद आज भी संस्कृति एवं सम्पत्ति के प्रतीक के रूप में उनका नाम लिया जाता है ।

वैदिक युग से ही मिथिला आर्य-संस्कृति एवं सभ्यता का केन्द्र रहा है। वैदिक सभ्यता का प्रसार सर्वप्रथम यहीं हुआ था। ब्राह्मण-उपनिषद् काल में पूर्वीभारत के प्रमुख राज्यों में काशी-कोशल एवं विदेह प्रमुख थे। शतपथ ब्राह्मण, वृहदारण्यक उपनिषद् तथा महाभारत में विदेहराज जनक को सम्राट कहा गया है इससे स्पष्ट है कि वे साधारण राजा से उच्चतर थे।

मिथिला राज्य की महानता का उल्लेख करते हुए 'महाभारत' में मिथिला नरेश को सबसे प्रतापी राजा माना गया है :-

> सर्वे राज्ञो मैथिलस्य मैनाकस्येव पर्वताः ।
> निकृष्टभूता राजानो..... ॥ महाभारत, III, 134.5

अर्थात् जिसप्रकार सभी पर्वत मैनाक पर्वत से निम्न कोटि के हैं उसी प्रकार मिथिला नरेश के मुकाबले में सभी राजागण भी कनीय स्तर के हैं। 'रामायण' में भी मिथिला के राजा जनक द्वारा संकाश्या नरेश के अलावे अनेक राजाओं को परास्त करने का उल्लेख मिलता है ।

'वृहदारण्यक उपनिषद्' से स्पष्ट जानकारी मिलती है कि विदेह राज्य के राजा जनक महान दार्शनिक थे तथा उनका राजदरबार दार्शनिक

क्रियाकलापों का केन्द्र-बिन्दु था। इसी से आकर्षित होकर दूर-दूर से विद्वान एवं दार्शनिक शास्त्रार्थों के लिए यहां आया करते थे ।

'शतपथ ब्राह्मण' में सर्वप्रथम विदेह शब्द का उल्लेख मिलता है ।[१] विदेघ माथव सदानीरा के पूर्वीतट पर अग्नि को लाए थे ।[२] मिथिला क्षेत्र की जनता तथा प्रदेश दोनों को ही विदेह नाम से जाना जाता था । प्राचीन काल में विदेह देश आर्य भूमि का प्राच्यतग प्रदेश था। वस्तुत: ऋग्वेद काल में विदेह का अस्तित्व नहीं मानना असंगत प्रतीत होता है ।[३] ऋग्वेदीय ऋषि नामि साप्य[४] विदेह के राजा थे। इससे यह सूचित होता है कि ऋग्वेदिक काल में विदेह 'आर्य स्थल' बन चुका था।[५] ऐसा प्रतीत होता है कि विदेह राज्य का सर्वप्रथम उल्लेख यर्जुर्वेद-संहिता में किया गया है ।[६] वैदिक साहित्य में विदेह की राजधानी के रूप में मिथिला का उल्लेख नहीं मिलता है । किन्तु बौद्ध संदर्भ, महाकाव्यों तथा पुराणों में इसका पर्याप्त प्रमाण मिलता है ।

विदेह राज्य तथा मिथिला नगर की स्थापना के संबंध में अनेक तरह के संदर्भ प्राप्त होते हैं । शतपथ ब्राह्मण[७] विदेघ माथव को सदानीरा नदी के पूर्वी तट पर सभ्यता को आरंभ करने वाला मानता है । विदेघ माथव द्वारा इस राज्य की स्थापना होने के कारण इस राज्य को 'विदेह' कहा जाने लगा। पुराणों से संकेत मिलता है कि निमि ने विदेह राज्य तथा उसकी राजधानी वैजयन्त या जयन्त[८] की स्थापना की तथा उनके पुत्र मिथि जनक ने मिथिला नगर की स्थापना की । इस तरह शतपथ ब्राह्मण से विदेह राज्य की स्थापना का संकेत मिलता है तो पुराणों से विदेह की राजधानी पहले जयन्त और फिर मिथिला नगर की। ऐसा लगता है कि पहले जयन्त विदेह की राजधानी थी तथा बाद में मिथिला नगर बसाकर राजधानी बनायी गयी। बौद्ध साहित्य में जयन्त का उल्लेख नहीं मिलता है लेकिन मिथिला का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है । 'भविष्य पुराण' के अनुसार निमि के पुत्र महान मिथि हुए । उन्होंने अपने भुजबल से तिरहुत के निकट में ही अपने नाम की मिथिलापुरी बसाई । पुरी उत्पन्न करने के कारण ही उन्हें जनक कहा गया।[९] रामायण[१०] में भी इसी तरह का संदर्भ मिलता है कि निमि के पुत्र मिथि ने मिथिला नगर की स्थापना की ।

विदेह राज्य में जनक राजवंश द्वारा शासन करने की चर्चा वैदिक साहित्यों के अतिरिक्त महाकाव्यों, पुराणों तथा बौद्ध साहित्यों में भी मिलती है ।[११] महाकाव्यों एवं पुराणों में जनक राजवंश की सूची भी दी गयी है। रामायण एवं विष्णु पुराण में निमि के शरीरमंथन द्वारा मिथि को उत्पन्न होने की अद्‌भुत कथा का वर्णन मिलता है । इस कथा के अनुसार इक्ष्वाकु पुत्र निमि ने एक यज्ञ का आरंभ किया जिसमें वसिष्ठ को होता वरण किया लेकिन वसिष्ठ ने इन्द्र के यज्ञ में अपने को व्यस्त बताकर तबतक के लिए रुकने को कहा । लेकिन वसिष्ठ को समय पर न पहुंचने पर निमि ने गौतम को ऋत्विक बनाया । इन्द्रयज्ञ समाप्ति के पश्चात् वसिष्ठ विदेह राज्य आए तो गौतम को यज्ञ कराते देख अत्यंत कुपित हुए तथा निमि को 'देह रहित' होने का शाप दे दिया । निमि ने भी वसिष्ठ को अनावश्यक क्रुद्ध होकर शाप देते हुए देख वैसा ही शाप दे दिया जिससे दोनो 'देहरहित' हो गए। उस शाप से वसिष्ठ की आत्मा मित्रावरूण के शुक्र में प्रवेश कर गया। उर्वशी के दर्शन से उन दोनों के वीर्यपात से वसिष्ठ ने दूसरा देह प्राप्त किया। दूसरी ओर निमि के शरीर में मनोहर गन्धयुक्त तेल आदि से लेप किए जाने के कारण दुर्गन्धि नहीं किया और तुरंत मरा जैसा दिखने लगा। मुनियों ने राजा के शरीर को अरणी से मंथन किया जिससे कुमार उत्पन्न हुआ। जनन होने के कारण उसका नाम जनक रखा गया तथा मंथन से उत्पन्न होने के कारण मिथि कहलाए। निमि देह रहित होने के कारण विदेह कहलाए।[१२] इस तरह की कथा का समर्थन अन्य पुराणों ने भी किया है ।

बौद्ध साहित्य में मिथिला की स्थापना विषय पर मत विभिन्नता है । कुछ साहित्यों में कहा गया है कि मिथिला में आदर्श पथ की स्थापना मखादेव ने किया था।[१३] त्रिपिटक अट्‌ठकथाओं[१४] के अनुसार राजा मन्धाता द्वारा पुब्बविदेह से लोगों को लाकर विदेहरठ्‌ठ में बसाया गया था। यह पुब्बविदेह एशिया का पूर्वी उपमहाद्वीप तथा सुमेरु पर्वत के पूर्वी भाग में स्थित था।[१५] राजा मन्धाता राजगृह के शासक महासम्मत के छठे वंशज थे।[१६]

मज्झिम निकाय[१७] के अनुसार गंगानदी के एक तरफ विदेह तथा दूसरी तरफ मगध राज्य स्थित था। दीघनिकाय[१८] के महागोविन्द सुत्त से

जानकारी मिलती है कि राजा रेणु ने अपने कर्मचारी महागोविन्द जोतिपाल की सहायता से विदेह राज्य की स्थापना की। इस तरह मिथिला के स्थापना पर विविध प्रकार के मतों को देखने के उपरांत अधिकतर विद्वान निमि के पुत्र मिथि को ही मिथिला का संस्थापक मानते हैं ।

मिथिला के अतिरिक्त विदेह, तीरभुक्ति, तपोभूमि, शाम्भवी, सुवर्णकानन, मन्तिलि, वैजयन्ती आदि नामों का उल्लेख इस क्षेत्र के लिए किया जाता है।[१९] वृहद्विष्णुपुराण में भी मिथिला को नगर कहा गया है।[२०] इसमें भी अनेक नाम का उल्लेख है ये हैं[२१]– मिथिला, तैरभुक्ति, वैदेही, नैमकानन, ज्ञानक्षेत्र, क्रियापीठ, स्वर्णलाङ्गल, जानकीजन्मभूमि, निरपेक्षा, विकल्मषा, रामानन्दकरी, विश्वभाविनी, तथा नित्यमङ्गला । रामायण के अनुसार मिथिला एक देश तथा उसकी राजधानी का नाम था।[२२] बौद्ध साहित्य भी इसका समर्थन करता है।[२३] बौद्धों के द्वारा मिथिला को मिथुलु भी कहा गया है। छठी सदी ई० पू० में इस संपूर्ण भूखण्ड को वृजिसंघ कहा गया जिसे पालिसाहित्य में वज्जि महाजनपद कहा गया है । गुप्त काल में इस क्षेत्र के लिए तीरभुक्ति नाम का प्रयोग किया गया है । बसाढ़ से प्राप्त गुप्तकालीन मुहर में तीरभुक्ति का उल्लेख किया गया है।[२४] कटरागढ़ (मुजफ्फरपुर जिला) से गुप्तवंशी राजा रामगुप्त के पुत्र कामेश्वर जीवगुप्त का ताम्रपत्र मिला है जिसपर भी तीरभुक्ति का उल्लेख मिला है।[२५] इसी तरह वृहद्विष्णु पुराण[२६] तथा शक्तिसंगम तंत्र[२७] में भी विदेह के साथ-साथ तीरभुक्ति का उल्लेख है लेकिन मध्यकाल में तीरभुक्ति के साथ-साथ तिरहुति शब्द का भी मिथिला क्षेत्र के लिए प्रयोग होने लगा । भविष्य पुराण में तैरहूत का उल्लेख विदेह के लिए हुआ है जबकि चौदहवीं सदी के मध्य में रचित मैथिली ग्रंथ वर्णरत्नाकार में ज्योतिरीश्वर ने तिरहुत शब्द का प्रयोग किया है।[२८] इसी सदी में चण्डेश्वर ने कृत्यचिन्तामणि में तीरभुक्ति विषय का उल्लेख किया है तथा कृत्यरत्नाकार में मिथिला राज्य तथा इसके राजा के लिए मिथिलाधिपति शब्द का प्रयोग किया है। गणपति ठाकुर ने गंङ्गाभक्ति तरङ्गिणी में मिथिला भूमण्डल शब्द का उल्लेख किया है। विद्यापति ने इस क्षेत्र के लिए मिथिला शब्द का खुलकर प्रयोग किया है तथा यहां के राजा को मिथिला भूप कहा है।[२९] इस तरह पूर्व बौद्ध काल में जो राज्य विदेह अथवा मिथिला के नाम से जाना जाता था, बौद्धकाल में इस क्षेत्र को वज्जी

महाजनपद कहा गया। गुप्तकाल से मध्यकाल तक इसे तीरभुक्ति एवं तिरहुत कहा गया तथा मध्य काल में इसे तिरहुत के अलावे मिथिला भी कहा गया। तिरहुत को मिथिला का पर्याय माना जाता है इसीलिए यहाँ के वासी मैथिल अथवा 'तिरहुतिया' कहे जाते हैं तथा यहाँ की लिपि 'मिथिलाक्षर' अथवा 'तिरहुता' के नाम से जाना जाता है ।

भौगोलिक सीमा

शतपथ ब्राह्मण[३०] से संकेत मिलता है कि सदानीरा नदी को पारकर विदेघ माथव ने अग्नि प्रज्वलित कर विदेह राज्य की स्थापना की थी। सदानीरा नदी को गंडक नदी से समता की गई है। इस तरह विदेह की पश्चिमी सीमा गंडक नदी को माना गया है। पूर्वी सीमा की जानकारी वैदिक एवं बौद्ध संदर्भ से नहीं मिलती है । इसके लिए हमें पौराणिक संदर्भ पर निर्भर करना पड़ता है ।

रामायण तथा बौद्ध साहित्यों में मिथिला की भौगोलिक सीमा की जानकारी नहीं मिलती है लेकिन इनमें इतना संकेत अवश्य मिलता है कि गंगा नदी के उत्तरी भाग में विदेह (मिथिला) नामक राज्य स्थित था।[३१] इसी तरह मज्झिम निकाय[३२] से स्पष्ट संकेत मिलता है कि गंगा नदी के एक तरफ विदेह तथा दूसरी तरफ मगध राज्य स्थित था। इसी तरह विदेह तथा मिथिला के उल्लेख के क्रम में हिमवत्, पब्बतरठ्ठ आदि का संदर्भ मिलता है । इससे स्पष्ट होता है कि एक तरफ हिमालय तथा दूसरी तरफ गंगा नदी थी ।

रायचौधुरी के अनुसार वज्जिमहाजनपद या वृजिसंघ गंगा के उत्तर नेपाल की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। पश्चिमी सीमा पर गंडक प्रवाहित होती थी जो वज्जि प्रदेश को मल्ल राज्य या कोशल से अलग करती थी। पूर्व में कोसी नदी तथा महानन्दा तक सीमा का विस्तार था। इस गणतंत्र में आठ छोटे-छोटे राजवंश शामिल थे जिनमें विदेह, लिच्छवि, ज्ञात्रिक तथा वृजि प्रमुख है । शेष राजवंशों का ठीक-ठीक पता नहीं चलता।[३३] अंगुत्तरनिकाय में वज्जि गणतंत्र की राजधानी वैशाली को कहा गया है।[३४] लिच्छवि राजवंश की सीमा संभवतः नेपाल तक थी और सातवीं शताब्दी ई० तक यथावत बनी रही।[३५]

गुप्तकाल से विदेह राज्य को तीरभुक्ति (तैरभुक्ति) कहा जाने लगा। वृहद्विष्णुपुराण[३६] तैरभुक्ति को बड़ा ही पवित्र देश मानती है, जिसका विस्तार गंगा से हिमालय तक तथा कौशिकी से गंडकी तक था :

गंङ्गाहिमवतोर्मध्ये नदी पञ्चदशान्तरे ।
तैरभुक्तिरितिख्यातो देशः परमशोभनः ।।
कौशिकीतु समारभ्य गण्डकी मधिगम्य वै ।

वृहद्विष्णुपुराण, मिथिला महात्म्य, २.५.

विदेह अथवा तैरभुक्ति की सीमा के लिए शक्तिसंगमतंत्र[३७] में भी कहा गया है कि गण्डकी के तट से चम्पा के वन तक यह विस्तृत था । उन्नीसवीं सदी में मिथिला के प्रसिद्ध मैथिली कवि चन्दा झा ने भी वृहद्विष्णुपुराण का समर्थन किया है ।[३८] आधुनिक विद्वानों[३९] ने भी इस मत का समर्थन किया है ।

जहां तक मिथिला की पूर्वी सीमा कोसी का प्रश्न है, यह प्रतिवर्ष अपनी धारा बदलती रही है इसलिए प्राचीन काल में इसकी धारा कहां थी? तथा कहां तक मिथिला की सीमा रही होगी? यह बड़ा ही जटिल प्रश्न है। कोसी पूरब में महानन्दा नदी से लेकर पश्चिम में बलान नदी तक के भूमि को अपनी क्रीड़ा-स्थल बना चुकी है।[४०] परिणामस्वरूप इसकी अनेक मृतधाराएं अभी भी दिखती है। इनमें सबसे पूरब की धारा को पनार कहा जाता है ।[४१]

यद्यपि ऐतिहासिक प्रमाण का अभाव है फिर भी ऐसा संभव है कि कोसी नदी अररिया के निकट पनार नदी की धारा होकर महानंदा नदी में मिलकर अधिक समय तक बहती रही है । स्थानीय मन्तव्य पीढ़ी दर पीढ़ी यहां कायम है जिससे एक तथ्य यह भी सामने आता है कि पनार कोसी की पुरानी धारा है। नेपाली क्षेत्र में पनार को बूढ़ी कोसी के नाम से भी जाना जाता है ।[४२] कोसी पर शोध करने वालों ने इस तथ्य को भी साबित करने का प्रयास किया है कि 1736 ई० से 1933 ई० के मध्य कोसी नदी बेलही तथा पूर्णिया होकर गुजरती थी ।[४३]

कोसी की अनवरत बदलती धारा के कारण ही भिन्न-भिन्न विद्वान

इसकी प्राचीन धारा पर भिन्न-भिन्न मत प्रकट करते रहे हैं । फिर भी जहाँ तक कोसी नदी द्वारा मिथिला की पूर्वी सीमा बनाने का प्रश्न है उसके लिए उत्तर बिहार तथा बंगाल की सीमा को ही मिथिला की पूर्वी सीमा मानना उचित होगा ।

इस प्रकार प्राचीन मिथिला क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर में नेपाल की तराई क्षेत्र जो उत्तरी बिहार की सीमा के सामने पड़ते हैं, से लेकर दक्षिण में गंगा नदी तक, पश्चिम में गंडक से लेकर पूरब में बिहार-बंगाल की आधुनिक सीमा तक का क्षेत्र पड़ता था। तदनुसार आधुनिक बिहार के तिरहुत, चंपारण, दरभंगा, कोसी, पूर्णिया, उत्तरी भागलपुर तथा उत्तरी मुंगेर प्रमण्डल के क्षेत्र प्राचीन मिथिला के अन्तर्गत आते थे ।

भौगोलिक दृष्टि से मिथिला को 25°28' तथा 26°52' उत्तरी अक्षांश एवं 84°56' तथा 86°46' पूर्वी देशान्तर के मध्य माना गया है।[४४] इसकी लंबाई करीब 400 कि०मी० तथा चौड़ाई 160 कि०मी० एवं समुद्रतल से करीब 879.0432 मीटर ऊपर है। इस तरह करीब 64000 वर्ग कि०मी० में यह फैली हुई है जो श्रीलंका के करीब-करीब समान, बेल्जियम से दो गुना, डेनमार्क से डेढ़गुणा तथा इंगलैंड के आधे से कुछ कम है ।[४५]

सुरुचि जातक में विदेह के क्षेत्रफल के लिए कहा गया है कि यह राज्य 300 योजन में फैली हुई थी ।[४६] 300 योजन की आधुनिक गणना करके हेमचन्द्र राय चौधरी ने 900 मील माना है । विदेह राज्य की राजधानी मिथिला नगर 21 मील में विस्तृत थी ।[४७] गान्धार जातक के अनुसार मिथिला का विस्तार 21 मील में था तथा विदेह राज्य 900 मील में विस्तृत था, जिसमें सोलह हजार गांव तथा अपार संपत्ति से परिपूर्ण कोषागार था ।[४८] अन्य जातकों[४९] में मिथिला के आकार के लिए कहा गया है कि इसकी परिधि सात योजन के लगभग थी। अंग की राजधानी चम्पा से मिथिला तक एक सड़क जाती थी जिसकी दूरी लगभग साठ योजन थी ।[५०]

'वृहद्विष्णुपुराण' में कहा गया है कि कौशिकी से गंडकी की दूरी 24 योजन तथा गंगानदी से हिमालय पर्वत की दूरी 16 योजन थी और इसी मध्य मिथिला राज्य स्थित था ।[५१] संस्कृत एवं पालि साहित्य में वर्णित योजन के आधुनिक मान पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग योजन

को 4 या 5 मील के समान मानते हैं तो कुछ लोग ढाई मील के समान। इसी प्रकार विद्वानों का एक दल 8 कोश (16 मील) तो दूसरा दल 4 कोश या 9 मील को सही मानते हैं । बुद्ध घोष ने इसे 7 मील माना है जो दीघ निकाय अट्ठकथा[५२] के 4 गावुत के बराबर है । महाजनक जातक[५३] में कहा गया है कि एक योजन की लंबाई-रथ के जुआ की लंबाई के बराबर होती है । इससे संकेत मिलता है कि योजन माप की एक छोटी इकाई थी जो बुद्ध घोष के मंतव्य से बहुत ही भिन्न था। इसी जातक में यह भी कहा गया है कि सात दिन में एक नाव द्वारा सात योजन की दूरी पार की जाती थी। इससे संकेत मिलता है कि योजन माप की एक बहुत बड़ी इकाई थी क्योंकि कोई भी नाव एक दिन में कम से कम 25 कि०मी० की दूरी अवश्य ही पार कर लेगी। इस तरह आज के संदर्भ में 'प्राचीन योजन' का सही-सही मान निकालना दुष्कर कार्य है ।[५४] इस पर गहन अन्वेषण की आवश्यकता है और इसके बाद ही सही माप निकाला जा सकता है ।

राज्य

प्राचीन साहित्य में विदेह के अनेकानेक शासकों का उल्लेख अलग-अलग ढंग से किया गया है । उत्तर वैदिक साहित्य में मिथिला के राजवंश को जनक वंश कहा गया है (वंशों जनकानां महात्मनां) और उनमें अनेक ने जनक नाम धारण किया था। रामायण में मिथिला पर शासन करने वाले निमि से लेकर सीरध्वज जनक तक 22 राजाओं की सूची दी गयी है। पुराणों द्वारा भी इस सूची का समर्थन किया गया है । लेकिन पुराणों की सूची बहुत विस्तृत है । सूची में उत्तर कालीन विदेह सहित कुल 54 राजाओं का नाम अंकित है ।[५५] उपनिषदों एवं महाकाव्यों में विदेह के राजाओं को महान विद्वान एवं दार्शनिक कहा गया है ।[५६] भागवत पुराण[५७] के अनुसार मिथिला के राजा 'आत्मन' के विषय में विशिष्ट जानकारी रखते थे। यज्ञ के बल पर गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए भी वे सांसारिक दुःख से परे होकर प्रसन्न रहते थे। ब्रह्मविद्या विषयक ज्ञान के लिए वे बड़ी ही ख्याति अर्जित किए हुए थे, इससे प्रभावित होकर दूर-दूर से विद्वान एवं दार्शनिक मिथिला के राजदेरबार आया करते थे तथा दार्शनिक शास्त्रार्थो में भाग लेते थे। जनक वंश के सभी राजाओं को विद्वता विरासत में मिली हुई थी। सांसारिक सुखों

के साथ-साथ दार्शनिक जीवन को अपनाने के कारण वे देह रहते हुए भी 'विदेह' कहलाते थे। 'विदेह' का तात्पर्य जीवन मुक्ति से था, जिस पदवी को बड़े ही निष्ठापूर्वक उस वंश के सभी राजा धारण करते रहे। यही कारण था कि 'उपनिषद् काल' में संपूर्ण भारत के दार्शनिक क्रियाकलापों का केन्द्रबिन्दु मिथिला के राजा जनक का राजदरबार ही हो गया था। इससे प्रभावित होकर अनेक ऋषि-मुनि यहां आया करते थे। इसी क्रम में व्यास पुत्र सुकदेव भी ब्रह्मविद्या की शिक्षा लेने यहाँ आए हुए थे।[५८] स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में मिथिला की अनुपम देन है।[५९]

बौद्ध साहित्य में मखादेव तथा उनके चौरासी हजार वंशजों को मिथिला का राजा कहा गया है।[६०] जातकों में अंगति[६१] अरिठ्ठजनक[६२], निमि[६३], विदेह[६४], वैदेह[६५], महाजनक[६६], साकीन[६७] तथा सुरुचि[६८], महापणाद को मिथिला का राजा कहा गया है। जातकों में निमि को जनक वंश के अन्तिम राजा के पूर्ववर्ती कहा गया है जबकि रायचौधरी ने कृति जनक अथवा कराल जनक को अंतिम राजा माना[६९] है। बौद्ध साहित्य में भी कलार जनक को अंतिम राजा माना गया है।[७०] कराल जनक के समय विदेह राजवंश का पतन हुआ था तथा वज्जिय गणतंत्र का उदय हुआ।[७१] इसके बाद लिच्छवियों का उदय हुआ जो उस समय उत्तर भारत के सबसे ताकतवर बने।

विदेह राज्य की राजधानी को मिथिला नगर कहा गया है- जिसकी आधुनिक पहचान पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों ने नेपाल के आधुनिक जनकपुर को प्राचीन मिथिला नगर माना है, लेकिन अधिकतर लोग इसे चार सौ वर्ष से पहले का नगर नहीं मानते। मिथिलांचल में पुरातात्विक उत्खनन तथा अनुसंधान का घोर अभाव है तथा पुराविदों द्वारा इसकी हमेशा ही उपेक्षा होती रही। फलस्वरूप प्राचीन मिथिला नगर पर कोई निश्चित मत तय नहीं हो पाया है। फिर भी प्राप्त साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मधुबनी जिला का विशाल पुरातात्विक धरोहर बलिराजगढ़ ही प्राचीन मिथिला का ध्वशांवशेष है।[७२] एक अल्प उत्खनन में तीसरी सदी ई० पू० तक की सामग्रियाँ यहां से मिली है और अगर पूर्ण उत्खनन हो तो जनकवंशी राजाओं के समय के

पुरावशेष मिलने की संभावना है । दुर्भाग्य की बात है कि मिथिला के बाद के अनेक नगरों का पुरातात्विक उत्खनन कराकर पता लगाया जा चुका है, लेकिन बिहार की सबसे प्राचीन नगर की अभी तक न ही खुदाई हो सकी है और न ही उसपर अनुसंधान ही ।

वृजि गणतंत्र तथा लिच्छविवंश की राजधानी वैशाली थी। जनक राजत्रंश के पतनोपरान्त राजनीतिक गतिविधियां मिथिला नगर के बजाय वैशाली नगर में स्थापित हुई । हम देख चुके हैं कि वज्जि गणतंत्र में आठ छोटे-छोटे राजवंश शामिल थे जिनमें विदेह, लिच्छवि, ज्ञात्रिक तथा वृजि, प्रमुख थे। शेष राजवंशों का ठीक-ठीक पता नहीं चलता । वैशाली का उल्लेख रामायण में विशालानगरी के रूप में की गयी है । वैदिक साहित्यों, पुराणों एवं बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में उक्त भिन्नता का ध्यान न देकर विदेह शब्द का विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया गया है । संपूर्ण विदेह क्षेत्र को छठी सदी ई० पू० में वज्जि महाजनपद के रूप में जाना जाता था ।

लिच्छवि वंश की स्थापना संभवत: सातवीं शताब्दी ई० पू० में हुई थी। तथा छठी सदी ई० पू० के उत्तरार्द्ध में महावीर तथा गौतम के समय यह वंश पूर्णरूपेण जम चुका था और इसके बाद अगली शताब्दी लिच्छवियों के पराभव की शताब्दी रही। लिच्छवि राजवंश की कुल संख्या 7 हजार 707 थी। लिच्छवि राजा चेटक की बहन विदेहदत्ता महावीर की माँ थी। चेटक की कन्या का नाम चेल्लना या वैदेही था जो अजातशत्रु की माँ थी।[७३]

बिम्बिसार के समय वज्जि के शासक इतने शक्तिशाली थे कि वे गंगा के पार वाले अपने पड़ोसी राज्य पर आक्रमण करने की घृष्टता प्राय: करते रहते थे । लेकिन अजातशत्रु के समय पासा पलट गया तथा वैशाली का गणतंत्र समाप्त हो गया ।

मगध सम्राट बिम्बिसार के पश्चात् अजातशत्रु मगध का शासक बना। वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी था और अपने साम्राज्य का विस्तार बड़ी तेजी से प्रारंभ किया। लिच्छविगण इस मार्ग में बहुत बड़े बाधक थे। अजातशत्रु ने लिच्छवियों के साथ 16 वर्षों तक घनघोर युद्ध किया तथा उनमें फूट डालकर पराजित किया और गणतंत्र का अन्तकर मगध साम्राज्य में वज्जि को मिला लिया ।

बौद्ध साहित्य में वैशाली, मिथिला, अंगुत्तराप की राजधानी आपण आदि नगरों का महात्माबुद्ध द्वारा अनेक बार भ्रमण करने का उल्लेख मिलता है। विदेह के अनेक गांवों तथा नगरों का भ्रमण कर बुद्ध द्वारा उपदेश करने का भी उल्लेख मिलता है। वैशाली का कूटागारशाला बौद्धों का प्रधान केन्द्र था, जहां बुद्ध ने अनेक वर्षाकाल बिताए थे ।

यद्यपि अजातशत्रु ने वज्जि गणतंत्र को ध्वस्त कर दिया, किन्तु अजातशत्रु के उत्तराधिकारी उदयिन के शासनकाल में भी वज्जि के लोग अपने स्वतंत्रता संग्राम को जीवित रखा। यही कारण था कि उदयिन ने राजगृह को छोड़कर पाटलिपुत्र नगर में अपनी राजधानी बनायी ।[७४] ताकि गंगा के पार स्थित विदेह राज्य को अधिकृत रखने में सुविधा हो। उसके उत्तराधिकारी अनिरुद्ध का सारा जीवन लिच्छवी लोगों के मामले को निपटाने में बीता। नन्दवंश के समय में संपूर्ण मिथिला नन्दराज्य के अधीन रहा। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में बौद्ध धर्म का वैशाली में व्यापक प्रभाव था। यहां द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ था। जिसमें बौद्ध धर्म संबंधी अनेक प्रश्नों पर विचार विमर्श हुआ था ।[७५] नन्दवंश के पश्चात् मौर्यवंश का उत्थान हुआ, जिसके साम्राज्य के अधीन भी मिथिला थी। कौटिल्य ने लिच्छवियों को 'राजशब्दोपजीविन: गणराजा:' कहा है ।[७६] बौद्ध केन्द्र की दृष्टि से वैशाली का महत्त्व अशोक के समय में भी था, यही कारण है कि अशोक ने यहां एक स्तंभ बनवाया था। संपूर्ण मिथिलांचल में मौर्यकालीन पुरावशेष मिलते हैं । जहाँ लौरिया नंदनगढ़, लौरिया अरेराज एवं रामपुरवा में अशोक के स्तंभ-लेख मिले हैं वहीं पुर्णिया, बनगांव, बहेड़ा, हाजीपुर, वैशाली, नंदनगढ़ आदि क्षेत्रों से आहत-मुद्राएं पायी गयी है। कटरागढ़, बलिराजगढ़, कोल्हुआ, असूरगढ़, सकलीगढ़, नौलागढ़, जयमंगलागढ़ आदि अनेकानेक स्थलों से मौर्यकालीन सामग्रियां मिली है ।

मौर्यकाल के पश्चात् शुंग तथा कुषाण काल में भी मिथिला मगध साम्राज्य के अन्तर्गत थी। यही कारण है कि तत्कालीन पुरावशेष-मिथिला के अनेक स्थलों से प्राप्त हुए हैं । वैशाली, चम्पारण तथा नेपाल से कुछ कुषाण-मुद्राएँ मिली हैं । कहा जाता है कि कनिष्क वैशाली से बुद्ध का शिक्षा पात्र उठाकर गान्धार ले गए ।[७७] दरभंगा के चन्द्रधारी संग्रहालय में

कुछ कुषाण मुद्राएं हैं । वैशाली से एक क्षत्रप रूद्रसेन की बहन महादेवी प्रमुदामा का एक मुहर प्राप्त हुआ है ।[७८] हाल ही में एक उत्खनन के क्रम में पाण्डवस्थान (समस्तीपुर) से अनेकानेक कुषाणकालीन पुरावशेष मिले हैं । उक्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि कुषाणों की सत्ता संपूर्ण मिथिला पर रही होगी ।

विदेह के लिच्छवियों को अजातशत्रु तथा उसके उत्तराधिकारियों से घनघोर संघर्ष करना पड़ा तथा पराजय भी हुयी, फिर भी आन्तरिक प्रशासन के विषय में वे स्वतंत्र थे तथा अपना प्रजातांत्रिक स्वरूप को अक्षुण्ण बनाये रहे ।[७९] कौटिल्य के अर्थशास्त्र से संकेत मिलता है कि मौर्यकाल में भी लिच्छवियों का संघात्मक प्रशासन विद्यमान था, संभवतः इसीलिए कौटिल्य ने लिच्छवियों से परामर्श लेने हेतु चन्द्रगुप्त को निर्देश दिया था ।[८०] इससे स्पष्ट होता है कि मौर्यशासन के अधीन रहते हुए भी लिच्छविगण अपनी एकता तथा स्वतंत्रता को अधिकांशतः सुरक्षित रखे रहे । मौर्यवंश के पतनोपरांत देश के अन्य प्रदेशों की भांति लिच्छवियों ने भी संभवतः अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली तथा शुङ्ग तथा काण्व के पतन के पश्चात् वे पुनः शक्तिशाली हो गए तथा उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी ।[८१] ईसा के प्रथम शतक में लिच्छवियों की सत्ता–विदेह के साथ–साथ नेपाल पर भी स्थापित हुई। इसकी एक शाखा ने कुछ समय के लिए मगध पर भी शासन किया, लेकिन कुषाणों के आगमन से वे पुनः कमजोर हो गये। प्रोफेसर योगेन्द्र मिश्र ने कुछ बौद्ध साहित्य की व्याख्या करते हुए विदेह में राजतंत्रात्मक स्वरूप को साबित करने की कोशिश की है तथा उसे वज्जि महाजनपद से अलग माना है। उनके अनुसार कराल जनक के बाद भी उनके वंशजों ने पूर्व मौर्यकाल तक मिथिला में शासन किया। लेकिन पालि साहित्य के तथ्यों पर पूर्ण विश्वास करना कठिन लगता है। अतः प्रोफेसर मिश्र के इस तर्क को स्वीकार करना असंभव है कि छठी सदी ई०पू० में मिथिला में गणतंत्र नहीं वरन् राजतंत्र था ।

'कुषाण शासन' के पश्चात् विदेह के लिच्छवियों ने अपने को शक्तिशाली बनाया। यदि ये लोग शक्तिशाली नहीं होते तो चन्द्रगुप्त उनकी सहायता से गुप्त साम्राज्य की स्थापना नहीं करते। गुप्तसाम्राज्य की स्थापना

से पूर्व तीरभुक्ति की प्रधानता पुनः स्थापित हुई । चन्द्रगुप्त ने वैशाली की राजकुमारी कुमारदेवी से विवाह किया तथा लिच्छवियों की सहायता से पाटलिपुत्र पर आधिपत्य जमाया। संभवतः कुमारदेवी के तरफ से उन्हें (तीरभुक्ति) का राज्य मिला जिससे गुप्त साम्राज्य की स्थापना होने पर तीरभुक्ति भी एक प्रमुख प्रान्त बना। गुप्तलेखों में संपूर्ण मिथिला क्षेत्र को 'तीरभुक्ति' कहा गया।

गुप्त साम्राज्य की स्थापना के समय विदेह के लिच्छवियों की इतनी महत्ता थी कि गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपनी पत्नी कुमारदेवी के नाम से एक सिक्का चलाया जिसमें 'लिच्छवयः' अंकित कराया । इतना ही नहीं लिच्छवियों की कुलदेवी सिंहवाहिनी दुर्गा को भी उसपर अंकित कराया। इस सिक्का से स्पष्ट संकेत मिलता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम तथा कुमारदेवी ने संयुक्त रूप से शासन किया। उनके उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त ने अपने प्रयाग प्रशस्ति में अपने द्वारा विजित प्रदेशों की सूची में तीरभुक्ति अथवा विदेह का कहीं भी जिक्र नहीं किया है बल्कि अपने को 'लिच्छवि दैहित्र' कहकर गौरवान्वित हुआ है । इस तरह स्पष्ट होता है कि गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त गुप्त तथा लिच्छवि दोनों ही वंशों का प्रतिनिधित्व करते थे। गुप्तकाल में वैशाली प्रशासन का एक प्रमुख केन्द्र था। बसाढ़ से प्राप्त गुप्तकालीन पुरावशेषों से गुप्त प्रशासन के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। वैशाली में अलग नगर शासन-व्यवस्था थी तथा प्रान्तीय शासन-व्यवस्था का भी यहाँ केन्द्र था। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान का यहाँ शुभागमन हुआ था। उनके यात्रा विवरण से भी वैशाली की महत्ता की जानकारी मिलती है। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के नवरत्नों में मिथिला के वररूचिमिश्र भी एक थे ।

गुप्त शासन के पतनोपरांत हर्षवर्द्धन का मिथिला पर अधिकार हुआ तथा अर्जुन या अरुणाश्व यहां का गवर्नर बना ।[८२] इस समय चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा इत्सिंग ने तिरहुत का भ्रमण किया था। उस समय तीरभुक्ति शासन का एक प्रधान केन्द्र था और अनेक विषय (जिला) में विभक्त था। मिथिला पर गौड़ाधिपति शशांक का भी कुछ समय तक शासन रहा ।

विविध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि हर्ष के मृत्युपरांत अर्जुन ने स्वयं

को मिथिला का स्वतंत्र शासक घोषित कर लिया। चीनी अभिलेख के अनुसार अर्जुन ने चीनी दूत वांगह्वेन-त्से को अपमानित किया ।[८३] फलस्वरूप वह नेपाल भाग गया एवं तिब्बती राजा स्रोग-चने-गम्पों द्वारा प्रदत्त 1200 तिब्बती सैनिकों के साथ लौट आया, जिसकी सहायता के लिए नेपाल के राजा ने भी 7000 अश्वारोही सैनिकों को भेजा । उक्त सम्मिलित सेना ने मिथिला के हिराहाती[८४] नामक स्थान में अर्जुन की सेना के साथ घमासान युद्ध किया, जिसमें अर्जुन की पराजय हुई एवं वह बंदी बनाकर चीन ले जाया गया। उक्त चीनी दूत की आर्थिक सहायता भास्कर वर्मन ने की थी। भास्कर वर्मन उस समय मिथिला के पूर्वी भाग पर शासन कर रहा था। किन्तु उक्त विवरण को इतिहास सम्मत मानना कठिन प्रतीत होता है। कारण चीनी दूत के प्रति अर्जुन ने दुर्भावना क्यों रखी होगी ? एवं आठ हजार सैनिकों के द्वारा तिरहुत विजय की घटना अविश्वसनीय प्रतीत होता है ।[८५]

अर्जुन के पश्चात् (648 ई०) करीब 70 वर्ष तक तिब्बत के प्रभाव में मिथिला रही । उसके बाद तिब्बत का प्रभाव मिथिला से समाप्त हुआ। पुन: मिथिला का इतिहास अंधकारमय है । ऐसा लगता है कि मिथिला में उस समय कोई स्वतंत्र शासक शासन करता था लेकिन इस संबंध में अधिक जानकारी नहीं मिलती है। नौवीं सदी में संपूर्ण उत्तरी भारत में सत्ता हथियाने के लिए युद्धों का तांता लग गया। पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट वंशों के मध्य लड़ाई शुरू हो चुकी थी-जिसका केन्द्र बिहार ही था। मिथिला भी इससे अछूती नहीं रही होगी । कुछ इतिहासकारों का मानना है कि दशवीं शताब्दी के प्रारंभ में जेजामुक्ति के चन्देल लोग मिथिला पर आक्रमण किये थे।[८६] किन्तु राधाकृष्ण चौधरी ने इसका खण्डन किया है।[८७] उनके अनुसार उस समय तक मिथिला पर पाल वंश का शासन स्थापित था। पालवंशी शासक महिपाल के इमादपुर (मुजफ्फरपुर) शिलालेख से स्पष्ट होता है कि तिरहुत पर उनका अधिकार था।[८८] वहीं नौलागढ़ शिलालेख तथा बनगांव ताम्रपत्र से स्पष्ट होता है कि संपूर्ण मिथिला पर विग्रह पाल का शासन था तथा वनगांव प्रशासनिक केन्द्र था। विग्रहपाल के समय में मिथिला की पश्चिमी सीमा गण्डक थी तथा कालचूरि वंश के लोगों के साथ उनका संघर्ष होता रहता था। कालचूरि वंश के शासकों के दबाव के कारण तिरहुत

में पाल शासकों ने राजधानी बनाकर शासन प्रारंभ किया । निग्रहपाल के समय में पालवंश का सूर्यास्त हो गया, फलस्वरूप कर्णाट वंश का उद्भव हुआ ।

1097 ई० में कर्णाट वंश की शासन-व्यवस्था मिथिला में स्थापित हुई जिन्होंने 227 वर्ष (1324 ई०) तक शासन किया । यहां स्मरणीय है कि इस वंश के तत्वावधान में संपूर्ण पूर्वी भारत में मिथिला ही ऐसा प्रान्त था जहां दिल्ली सल्तनत का प्रभाव नहीं पड़ा। राजनैतिक दृष्टि से मिथिला के इतिहास में इसे स्वर्ण-युग कहा जाता है, क्योंकि इस युग में मिथिला में संगठित राज्य एवं शासन-प्रणाली की स्थापना हुई तथा कला-साहित्य एवं मैथिली भाषा का विकास हुआ । विक्रमांक चालुक्य के आक्रमण के समय से ही उसके सेना के अनेक कर्णाट सिपाही मिथिला और बंगाल में बस गए। उन्हीं में से एक सैनिक सरदार नान्यदेव ने मिथिला में कर्णाटवंशी शासन की स्थापना की। नान्यदेव स्वयं विद्वान थे, जिन्होंने अपनी राजनैतिक कुशलता से अपने साम्राज्य को शक्तिशाली बनाया। उनकी राजधानी सिमरांव में थी जहां से उसने नेपाल को भी अपने शासनाधीन किया ।

नेपाल के शिलालेख से भी कर्णाटवंशी राजाओं के विषय में जानकारी मिलती है ।[८९] नान्यदेव के मंत्री श्रीधर दास थे जिनका लिखा हुआ 'अभिलेख' अंधराठाढ़ी से प्राप्त हुआ है। श्रीधर के पिता बटुदास सेनवंश के महासामन्त थे। सिमरांव गढ़ से भी नान्यदेव का एक शिलालेख मिला है। नान्यदेव ने समस्त मिथिला पर अपना एक छत्र शासन स्थापित किया तथा गंडक से लेकर पूर्व में कौशिकी तक अपना राज्य का विस्तार किया एवं उत्तर में नेपाल को अधिकृत किया। मिथिला में जनक वंश के पश्चात् इसे ही प्रथम राजवंश कहा जा सकता है । राज्य स्थापना के साथ-साथ उन्होंने सुदृढ़ एवं संगठित शासन विधान को भी जन्म दिया । नान्यदेव के पश्चात् उनके पुत्र गंगदेव राजा हुए । गंगदेव का भाई मल्लदेव बड़ा ही वीर एवं योद्धा था जिससे दोनों में मतभेद था। संभवतः मिथिला राज्य का दोनों भाई में बंटवारा हुआ जिसके अनुसार पूर्वी मिथिला पर मल्लदेव का शासन हुआ जिसकी राजधानी भीट-भगवानपुर (मधुबनी जिला) बनी। मल्लदेव के शासन के अधीन ही नेपाल को रखा गया। गंगदेव की राजधानी सिमरांव ही

रहा । शासन के प्रारंभ में उनका समय संकट से गुजरा जिसमें उन्हें बंगाल के सेन राजा से युद्ध करना पड़ा था। लेकिन बाद का समय बड़ा ही शान्तिपूर्ण रहा। गंगदेव ने मिथिला में अनेक प्रशासनिक सुधार किए। राज्य को विभिन्न परगना में विभाजित कर राजस्व वसूलने हेतु चौधुरी की नियुक्ति की गयी। विवादों के निपटारे हेतु 'पंचायत' का चुनाव कराया गया ।[१०] यह व्यवस्था बाद में भी रही।

गंगदेव के पश्चात् नरसिंह देव राजा बने जिनके समय में नेपाल से संबंध अच्छा नहीं रहा। संभवतः नेपाल के स्थानीय राजा उन्हें केवल 'कर' दिया करते थे। 'पुरुषपरीक्षा' में विद्यापति ने कहा है कि नरसिंह देव अपने चाचा मल्लदेव के साथ कन्नौज जाया करते थे। नरसिंह के बाद रामसिंह देव राजा बने जो विद्या एवं धर्म के प्रेमी थे। उनके समय में वेदों की टीका आदि लिखी गयी तथा कुछ प्रशासनिक सुधार भी किए गए । कोतवाल तथा पटवारी की प्रथा उसी समय चली। तिब्बती यात्री धर्मस्वामी उन्हीं के समय मिथिला आए थे। धर्मस्वामी के विवरण से यह ज्ञात होता है कि मुसलमानों का आक्रमण बढ़ गया था, इसीलिए रामसिंह किलाबंदी पर ज्यादा जोर देते थे। रामसिंह देव के पश्चात् शक्ति सिंह राजा हुआ- जो बड़ा ही अत्याचारी था। उसके निरंकुश शासन को रोकने हेतु वृद्धों ने सात लोगों का परिषद् का गठन किया था। शक्तिसिंह के बाद हरिसिंहदेव राजा हुए जिनके समय में सामाजिक नियमों को सुदृढ़ करने हेतु 'पंजी व्यवस्था' प्रारंभ की गयी। पंजी प्रथा को 'हरिसिंहदेवी प्रथा' भी कहा जाता है । हरिसिंह देव के मंत्री चण्डेश्वर ठाकुर बड़े ही विद्वान तथा राजनीति के ज्ञाता थे। उनका राजनीति रत्नाकर- भारतीय राजनीति शास्त्र का एक अपूर्व ग्रंथ माना जाता है । तत्कालीन शासन प्रणाली की सूचना इस ग्रंथ से मिलती है । उन्होंने अन्य सात रत्नाकर की भी रचना की थी। 1323-24 ई० में गियासुद्दीन तुगलक ने मिथिला पर आक्रमण किया।[११] हरिसिंह देव मिथिला से भागकर नेपाल चले गए तथा वहीं अपना राज्य स्थापित किए, उस समय से उनके वंशज 1764 ई० तक राज करते रहे ।[१२] वैसे 1375 ई० तक उनके वंशजों का कहीं-कहीं मिथिला में भी शासन रहा । मिथिला में वे लोग मुसलमान आक्रान्ताओं का विरोध करते रहे तथा अपना शासन बनाए रहे । बाद में तुगलक ने मिथिला को दिल्ली सल्तनत में मिलाकर सुगौना (मधुबनी) के कामेश्वर ठाकुर को

मिथिला का शासक बनाया ।

हरिसिंह देव का मिथिला से पलायन के पश्चात् मुहम्मद तुगलक ने मिथिला से अपना मुद्रा निकाला जिसका समय 1330-31 ई० होता है लेकिन अन्य प्रान्तों की तरह मिथिला में मुसलमानों का आधिपत्य नहीं हो सका । उन्हें केवल 'कर' से मतलब रह गया । इसके अतिरिक्त मिथिला की स्वतंत्रता पूर्णतः सुरक्षित रही ।

कर्णाटवंशी शासक प्राचीन मिथिला के जनकवंशी शासकों के तरह विद्यानुरागी तथा विद्वानों के आश्रयदाता एवं संरक्षक बने। उनके समय में कन्नौज, मगध तथा गौड़ के विद्वान एवं बौद्ध पण्डित तुर्कों के आक्रमण के भय से भागकर तिरहुत में आश्रय लिये थे। उक्त पण्डितों ने अपने साथ-साथ अपने अमूल्य ग्रंथों को भी यहां लाकर सुरक्षित रखा। प्राचीन विदेह की भांति कर्णाटकालीन मिथिला भी हिन्दू संस्कृति तथा विद्या का आश्रय स्थल एवं केन्द्र थी। इस काल में धर्मशास्त्रों पर अनेक निबंध लिखा गया तथा स्मृति का यहां केन्द्र बना। संस्कृत साहित्य का जहां वह चरमोत्कर्ष का काल था, वहीं ज्योतिरीश्वर ने मैथिली भाषा का प्रथम ग्रंथ 'वर्णरत्नाकर' की रचना की । उसी काल में भारत के महान दार्शनिक गंगेश उपाध्याय ने करियन (समस्तीपुर जिला) में न्यायशास्त्र की एक नयी शाखा के शिक्षण हेतु संस्थान की स्थापना की थी।[१३] इसीलिए गंगेश को नव्यन्याय का जनक माना जाता है । यह संस्थान इतना प्रसिद्ध हुआ कि यहां देश के सुदूरवर्ती भागों से लोग शिक्षा ग्रहण करने आया करते थे और विद्वान होकर नवद्वीप अथवा नदिया (पं० बंगाल) जाया करते थे ।

इस प्रकार कर्णाटवंशी राजाओं ने करीब ढाई सौ वर्ष मिथिलापर शासन कर अनेक क्षेत्रों में अपना अमिट छाप छोड़ गए । वस्तुतः इस समय में मिथिला का राजदरबार संस्कृत शिक्षा का महान केन्द्र बन गया था तथा विशाल साहित्य संस्थान का दृश्य यहां उपस्थित होता था- जहां तद्युगीन साहित्यकार एवं दार्शनिकगण अपनी प्रतिभा का सफल प्रदर्शन करते थे। नेपाल की तराई में सिमरांव गढ़ का भग्नावशेष जो बिखरी हुई तथा उपेक्षित है- वह मुसलमान आक्रमण से पूर्व की मिथिला की उपलब्धियों की मार्मिक कथा कहती है।[१४] वास्तव में अभिशप्त भवन का क्षतविक्षत

भग्नावशेष मुसलमानी धर्मान्धता तथा हिन्दू प्रतिकार के बीच चलता हुआ पांच सौ वर्षों के निरन्तर संघर्ष की दर्दनाक गाथा कहती है ।[९५]

कर्णाटवंश के शासन समाप्त कर गियासुद्दीन तुलगक ने तिरहुत को दिल्ली सल्लनत के अधीन कर लिया। सुल्तान ने हरिसिंह देव के नेपाल पलायन के तीस वर्ष पश्चात् 1553 ई० में मिथिला का राज्य मैथिल ब्राह्मण कामेश्वर ठाकुर को प्रदान किया ।[९६] लेकिन राधाकृष्ण चौधरी ने कामेश्वर ठाकुर के राज्यारोहण का समय 1325 ई० कहा है ।[९७] कामेश्वर ठाकुर के राजवंश को ओइनवार, सुगांव, कामेश्वर तथा ठाकुर वंश के नामों से भी जाना जाता है। कामेश्वर ठाकुर ओइनवार मूल के काश्यप गोत्रीय मैथिल ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज ओईन ठाकुर प्रकाण्ड पण्ड़ित थे जिन्हें कर्णाटवंशी राजा द्वारा ओइनी गांव (समस्तीपुर जिला) दान में मिला था। ओइनी गांव उनका मूलग्राम था इसलिए वे ओइनवार कहलाते थे। गंगाकृत्यविवेक नामक ग्रंथ में वर्द्धमान उपाध्याय ने कामेश्वर को मिथिला का वास्तविक शासक माना है। (कामेशोमिथिलामशासत्)[९८]

सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के समय में साम्राज्य का अनेक भाग स्वतंत्र हो गया था। 1339 ई० में बंगाल में भी विद्रोह हुआ। 1346 ई० में शमसुद्दीन इलियास नामक व्यक्ति ने बिंहार, मिथिला के दक्षिणी भाग तथा बनारस पर कब्जा कर लिया। मिथिला को उसने दो भागों में बाँट दिया। बूढ़ी गंडक के दक्षिणी भाग पर उसका कब्जा था तथा उत्तरी पर ओइनवार शासक का ।[९९] बूढ़ी गण्डक के तट पर उसने सम्सुद्दीनपुर नामक नगर बसाया- जिसे आज समस्तीपुर कहा जाता है। उसने नेपाल पर भी आक्रमण किया था। उसने गंगा तथा गंडक के संगम पर हाजीपुर नामक नगर बसाया। फिरोजशाह तुगलक ने इलियास को खदेड़कर तिरहुत को मुक्त किया। वहां कर वसूलने के लिए अपना पदाधिकारी नियुक्त किया ।[१००]

इस प्रकार तिरहुत दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गया तथ, सुल्तान ने मिथिला के शासन का अधिकार कामेश्वर ठाकुर को दे दिया। ओइनवार शासक आन्तरिक मामले में स्वतंत्र थे। सुल्तान उनके शासन में कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे, केवल वे अपना कर पाते थे ।

कामेश्वर के पुत्र भोगीश्वर राजा हुए[१०१] जो फिरोज साह के मित्र

थे ।[१०२] भोगीश्वर ठाकुर के पश्चात् गणेश्वर ठाकुर राजा हुए, गणेश्वर की हत्या कर दी गई जिसके बाद उनके पुत्र कीर्त्तिसिंह गद्दी पर बैठे । कीर्त्तिलता[१०३] के अनुसार कीर्तिसिंह ने अपने पिता की हत्या का बदला लेने हेतु असलान से युद्ध किया जिसमें उनके बड़े भाई वीर सिंह भी मारे गये। कीर्तिसिंह ने उक्त युद्ध में अपनी वीरता तथा पराक्रम का प्रदर्शन किया जिसमें सुल्तान इब्राहिम शाह ने उनकी सहायता की । युद्ध में असलान मारा गया तथा इब्राहिम शाह कीर्तिसिंह को राजा बनाकर तिरहुत से वापस दिल्ली लौट गया ।[१०४] कीर्तिसिंह तथा उनके दो भाइयों वीरसिंह तथा राजसिंह में से किसी को भी संतान नहीं था इसलिए कामेश्वर ठाकुर के छोटे पुत्र भवसिंह राजा बने ।[१०५] विद्यापति के शैवसर्वस्वसार में उन्हें पराक्रमी राजा कहा गया है । वे स्वयं विद्वान तथा विद्वानों के आश्रयदाता थे। भवसिंह के शासनकाल में मिथिला साहित्यिक तथा बौद्धिक दृष्टि से गौरवपूर्ण थी।[१०६] महान हास्य सम्राट 'गोनू झा' उन्हीं के काल में हुए थे।

भवसिंह के ज्येष्ठ पुत्र देवसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए। उसने गरूड़नारायण[१०७] का विरुद धारण किया तथा ओइनी को छोड़कर देवकुली (देकुली) में नयी राजधानी स्थापित की।[१०८] उनका विवाह महामहोपाध्याय रामेश्वर की पुत्री हासिनी देवी से हुआ था। (देवसिंह नृपनागर रे हासिनी देइ कन्त-पदावली)। पुरुष परीक्षा तथा शैवसर्वस्वसार से ज्ञात होता है कि देवसिंह महान योद्धा थे । वे मिथिला के उदारतम राजा माने जाते थे । कहा जाता है कि उन्होंने ब्राह्मणों को सोने का तुला पुरुष, हाथी तथा रथ आदि दान दिया था। वे विद्वानों के महान संरक्षक थे। उन्हीं के निर्देश पर विद्यापति ने भूपरिक्रमा की रचना की थी। ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए जो ओइनवार वंश के सबसे प्रसिद्ध एवं पराक्रमी राजा बने । उनके आग्रह पर विद्यापति ने पुरुष परीक्षा की रचना की थी। विद्यापति की पदावली शिवसिंह की प्रशंसा से भरी पड़ी है जिसमें उन्हें रूपनारायण विरुदधारी कहा गया है । (राजा शिव सिंह रूपनारायण लखिमा देइ रमाने)

महाकवि विद्यापति राजा शिवसिंह के मित्र, मार्गदर्शक एवं परामर्शदाता के साथ-साथ उनके जीवनी लेखक भी थे । शिवसिंह बचपन से ही कार्यकुशल एवं कर्मठ थे जिन्होंने अपने पिता के समय ही प्रशासन में सहयोग देना प्रारंभ कर दिया। देवकुली को छोड़कर शिवसिंह ने गजरथपुर

को अपना राजधानी बनाया जहां से विस्फी का दानपत्र निर्गत हुआ था।[१०९] शिवसिंह एक वीर एवं योद्धा थे जिन्होंने गौड़ तथा गज्जन की सेना से युद्ध किया।[११०] संभवत: उन्होंने जौनपुर के शर्कीवंश के सुल्तान के साथ भी युद्ध किया था। शिवसिंह ने शत्रुओं को परास्त कर अपने राज्य सीमा से बाहर खदेड़ दिया था। ऐसा लगता है कि शिवसिंह ने गौड़ पर भी अधिकार कर लिया था। इसीलिए गौड़ेश्वर की उपाधि धारण की थी।[१११] शिवसिंह ने सोना का मुद्रा चलाया जिसके आधार पर कहा जाता है कि वे मिथिला को पूर्णरूपेण स्वतंत्र बना लिए थे।[११२] उन्होंने दिल्ली सुल्तान को कर देना भी बंद कर दिया था। परिणामस्वरूप सुल्तान का प्रकोप बढ़ गया तथा शिवसिंह को गिरफ्तार कर दिल्ली ले जाया गया, जहां से विद्यापति अपनी प्रतिभा से उन्हें छुड़ा लाये । बाद में पुन: सुल्तान के साथ उनका युद्ध हुआ जिसमें शिवसिंह शहीद हो गए। इस प्रकार शिवसिंह ओइनवार वंश के सबसे प्रतापी राजा हुए जिन्होंने अपना मुद्रा चलाया तथा वीरता को प्रदर्शित करते हुए साम्राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ायी। विद्या एवं विद्वानों के वे महान संरक्षक थे। उनके काल में मैथिली भाषा का बड़ा विकास हुआ ।

शिवसिंह के पश्चात् उनकी रानी लखिमा मिथिला की गद्दी पर बैठी। तत्कालीन भारतीय इतिहास की यह एक अनोखी घटना थी। क्योंकि सारे देश में उस समय कठोर पर्दा व्यवस्था लागू था और मिथिला में विद्यापति के समय लखिमा एवं विश्वास देवी जैसी विदुषी महिलाओं ने शासन किया। लखिमा के बाद शिवसिंह के भाई पद्मसिंह राजा बने जो सुल्तानों के निर्देशानुसार राज किये। वे नि:सन्तान थे इसलिए उनके बाद उनकी पत्नी विश्वास देवी गद्दी पर बैठी। उनके निर्देश पर ही विद्यापति ने शैवसर्वस्वसार, प्रमाण भूत-पुराण संग्रह तथा गङ्गावाक्याबली की रचना की थी। विश्वासदेवी के पश्चात् भवसिंह का छोटापुत्र तथा देवसिंह का अनुज हरिसिंह गद्दी पर बैठा। जिसका उल्लेख उनके पुत्र नरसिंह के कन्दहा अभिलेख में किया गया है। हरिसिंह के बाद नरसिंह देव राजा बने । उनकी पत्नी धीरमती थी जिनके निर्देश पर विद्यापति ने दानवाक्यवली की रचना की । नरसिंह के निर्देश पर विद्यापति ने विभागसार की रचना की थी। विद्यापति के दुर्गा भक्ति तरंगिनी में उन्हें महावीर, महादानी तथा प्रकाण्ड विद्वान कहा गया है। उनके संरक्षण में म०म० सुधाकर ने ज्योतिष ग्रंथ रत्नावली की रचना की

थी। उनकी दूसरी पत्नी हीरा थी जिनका पुत्र चन्द्रसिंह था। मिसरू मिश्र के विवादचन्द्र में इसी चन्द्रसिंह का उल्लेख मिलता है ।

नरसिंह के पश्चात् उनकी पत्नी धीरमती सिंहासनारूढ़ (1460 ई०) हुई[११३] मित्र-मजुमदार के अनुसार धीरमती ने अपने पुत्र धीरसिंह के साथ-साथ 1440 ई० से 1453 ई० तक शासन की थी। वह परम विदुषी थी। धीरमती के पश्चात् क्रमशः धीरसिंह, भैरवसिंह, रामभद्रदेव तथा अन्त में लक्ष्मीनाथ देव ओइनवार वंशी राजा हुए। सोलहवीं सदी के आरंभ में नसरत शाह ने तिरहुत पर आक्रमण कर लक्ष्मीनाथ की हत्या कर अपने राज्य में मिला लिया और अपने दामाद अलाउद्दीन को राज्यपाल बनाया। ओइनवार वंशी शासन के पतनोपरांत तिरहुत के छोटे-छोटे भागों पर कुछ शक्तिशाली जमींदार अपने को स्वतंत्र घोषित कर राज करने लगे तथा बाबर को 'कर' देने लगे। इस प्रकार मिथिला के ओइनवार शासन का दुःखद अंत हुआ लेकिन इस काल में मिथिला की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से अभूतपूर्व विकास हुआ। उस युग की महान देन महाकवि विद्यापति थे। जिनके काल में अनेक अन्य विद्वानों एवं दार्शनिकों का भी प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने अपनी रचना से साहित्य एवं भारतीय दर्शन को संपुष्ट किया । इस काल में अनेक विदुषियों का भी मिथिला में प्रादुर्भाव हुआ ।[११४]

यद्यपि ओइनवार शासकों के समय में अनेक बार दिल्ली तथा बंगाल के मुसलमानों का तिरहुत पर आक्रमण होता रहा। लेकिन तत्कालीन शासकों ने सुल्तान को 'कर' देकर तिरहुत की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखा। 1526 ई० में इब्राहिम लोदी की हार के पश्चात् बाबर का भी प्रभाव तिरहुत पर हुआ। उनके लेख में चंपारण तथा तिरहुत के राजा रूपनारायण का उल्लेख है।[११५] ओइनवार शासन के पश्चात् मिथिला पर नशरत शाह का अधिकार हुआ तथा 1530 ई० से 1545 ई० तक यहाँ अराजकता व्याप्त रही। तत्पश्चात् दिल्ली शासन की तरफ से कुछ दिनों के लिए केशव कायस्थ को तिरहुत का राज्य मिला था।[११६] मुगल साम्राज्य की तरफ से तिरहुत के लिए एक गवर्नर नियुक्त था । हाजीपुर पर शेरशाह का भी प्रभाव था, इसीलिए 1547 ई० में हुमायुं ने मिर्जा हिन्दाल को हाजीपुर पर कब्जा करने का आदेश दिया था ।

आइने अकबरी के अनुसार अकबर के समय में संपूर्ण तिरहुत राज्य को तीन सरकारों में विभाजित कर दिया गया।[११७] चंपारण सरकार के अन्तर्गत 3 महाल तथा 85,711 बिगहा जमीन रखा गया। हाजीपुर सरकार के अन्तर्गत 11 महाल तथा 436, 953 बिगहा जमीन तथा तिरहुत सरकार के अन्तर्गत 74 महाल एवं 266, 464 बिगहा जमीन रखा गया।[११८] तिरहुत सरकार के अन्तर्गत दरभंगा भी एक महाल था। इस तरह तिरहुत सरकार को हाजीपुर एवं चंपारण सरकारों से अलग कर राजस्व वसूली की व्यवस्था की गई ।

मुगल सम्राट अकबर ने महामहोपाध्याय महेश ठाकुर को दरभंगा का राज प्रदान किया था। म०म० महेश ठाकुर प्रकाण्ड पंडित थे जिनकी संस्कृत, विज्ञान एवं कला संबंधी जानकारी ने मुगल सम्राट अकबर को अत्यधिक प्रभावित किया था। परिणामस्वरूप उन्हें सम्राट ने दरभंगा के राज से पुरस्कृत किया था।[११९] महेश ठाकुर से ही दरभंगा में खड़ौरे वंश का शासन आरंभ हुआ। इस वंश के महाराजागण मुगल सम्राट को कर दिया करते थे। 1556 ई० में इस वंश का शासन प्रारंभ हुआ तथा इस वंश के महाराजाओं को लोग मिथिलानरेश तथा मिथिलेश आदि कहने लगे। महेश ठाकुर के पश्चात् गोपाल ठाकुर राजा हुए जिनके समय में पठानवंशी मुसलमान लोग तिरहुत में आकर बस गए । 1575 ई० में दाउद खां ने मुगल सम्राट के विरूद्ध विद्रोह किया। अकबर ने तिरहुत, हाजीपुर तथा बिहार की सेना की सहायता से दाउद को दबाया।[१२०] 1580 ई० में टोडरमल के अधीन बिहार तथा बंगाल को रखा। उससे पूर्व मानसिंह हाजीपुर के गवर्नर थे।[१२१] सैनिक दृष्टि से हाजीपुर बहुत महत्वपूर्ण बन गया था। सम्राट ने खान-ए-आजम को तिरहुत का गवर्नर बनाया। 1580 ई० के पश्चात् परमानन्द ठाकुर दरभंगा के राजा बने, तत्पश्चात् शुभंकर ठाकुर राजा बने। उन्हीं के समय में भवारा मिथिला की राजधानी बनी। वह एक प्रतापी राजा था। शुभंकरपर नगर की स्थापना उन्हीं के द्वारा हुई । शुभंकर ठाकुर के पश्चात् क्रमशः पुरुषोत्तम ठाकुर, नारायण ठाकुर, सुन्दर ठाकुर तथा महिनाथ ठाकुर राजा हुए । महिनाथ ठाकुर का सिमरांव के राजा गजसिंह के साथ संघर्ष हुआ था। महिनाथ ने पूर्णिया के उत्तर-पूर्व के इलाके में नेपाल के मोरंग वालों को भी परास्त किया था। उस समय औरंगजेब का शासन

दिल्ली पर था। नेपाल की तराई में अनेक प्रकार का विवाद चल रहा था। औरंगजेब ने गोरखपुर के फौजदार अलाहवर्दी खां तथा तिरहुत के फौजदार मिरजा खां को तराई के जमींदारों को दबाने हेतु भेजा था।[१२०] मिरजा खां के पश्चात् मासूम खां, नुसेरी खां तथा अन्य क्रमशः फौजदार बने। 1663 ई० के बाद शाहनवाज खां तथा हादी खां तथा 1696 में फिदाय खां को तिरहुत का फौजदार बनाया गया।[१२३] 1701 में शमशेर खां इस पद पर बना तथा औरंगजेब के समय ही नबाब जाफर खां ने धरमपुर परगना के राजा दुरजन सिंह को गद्दी से हटा दिया था।[१२४]

महिनाथ ठाकुर के पश्चात् क्रमशः नरपति ठाकुर तथा राघवसिंह मिथिला के राजा बने। राघव सिंह 1739 ई० तक राज किये तथा बेतिया के राजा ध्रुव सिंह के साथ उनकी लड़ाई हुई थी । अठारहवीं सदी में तिरहुत बंगाल सूबे का अंग बन गया तथा डिप्टी नवाब अलीवर्दी ने 1720 ई० में राघव सिंह को राजा का पदवी दिया। साथ ही संपूर्ण तिरहुत का ठीका एक लाख सालाना पट्टा के आधार पर उन्हें मिला। नेपाल तराई के पंचमहला के राजा भूपसिंह से उनकी लड़ाई हुई थी। जिसमें भूपसिंह मारा गया। राघव सिंह के समय में संपूर्ण पूर्वी भारत में अराजकता फैल गयी थी तथा सभी जमींदार अपने को स्वतंत्र करना चाहते थे। इसी क्रम में बेतिया, दरभंगा तथा चकवार, बेगूसराय के राजागण भी अपने को स्वतंत्र कर लिये, लेकिन अलीवर्दी ने 1730 में बेतिया के राजा को दबाया, फिर दरभंगा के अफगान नेता करीम खां को अधीन में किया। नेपाल तराई के बंजर लोगों को दबाने के पश्चात् दरभंगा के राजा को दबाया । राघव सिंह के बाद विष्णुपति और फिर नरेन्द्र सिंह राजा बने। उनके समय में अलीवर्दी ने तिरहुत का पुनः बंदोबस्त किया ।[१२५]

1745 ई० में तिरहुत के अफगानों ने विद्रोह कर दिया जिसे अलीवर्दी ने दबा दिया। पटना के राजा रामनारायण तथा दरभंगा के नरेन्द्र सिंह के बीच बलान नदी के तट पर कंदर्पीघाट में युद्ध हुआ जिसमें नरेन्द्र सिंह की जीत हुई थी । इसका वर्णन मैथिल लाल कवि के पद्य में पायी जाती है ।[१२६] नरेन्द्र सिंह के समय में लगान देने में विलंब के कारण अलीवर्दी ने अन्य राज्यों की तरह मिथिला पर भी आक्रमण किया था जिसका उल्लेख

सियास्लमुतखरिन तथा रियाजुसालातिन में मिलता है ।[१२७] 1760 में बेतिया तथा हाजीपुर पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। 1765 में ईस्ट इण्डिया कंपनी को दीवानी मिली तथा सूबा बंगाल में उनका आधिपत्य जम गया। 1772 में पांच वर्षो के लिए तिरहुत के लिए राजस्व निश्चित हुआ। 1774 में तिरहुत को पटना के अधीन किया तथा इसके लिए अमला नियुक्त किया गया। 1782 में ग्रान्ड तिरहुत के प्रथम कलक्टर नियुक्त हुए। 1790-93 ई० के मध्य परमानेन्ट सेट्लमेन्ट के तहत संपूर्ण तिरहुत अंग्रेजों के अधीन आ गया तथा इसके राजागण मात्र जमीन्दार के रूप में ही रह गए ।

1770 ई० में नरेन्द्र सिंह की मृत्यु हो गई, जिसके पश्चात् उनकी पत्नी रानी पद्मावती 1778 ई० तक गद्दी पर बैठी। पद्मावती के बाद प्रतापसिंह राजा बने । उन्हीं के समय में (1782 ई०) भवारा से राजधानी झंझारपुर स्थानान्तरित हो गया ।[१२८] प्रताप सिंह के बाद 1785 में माधव सिंह राजा बने तथा अपना निवास उन्होंने दरभंगा में बनाया। उन्हीं के समय में 1790 में लॉर्ड कार्नवालिस ने परमानेन्ट सेट्लमेन्ट के तहत तिरहुत को अपने अधीन कर लिया । माधव सिंह ने इसका विरोध किया तथा संपूर्ण तिरहुत सरकार पर मालिकाना का दावा किया था। उनके दावे के अनुसार उनके पूर्वज को मुगल सम्राट अकबर ने संपूर्ण तिरहुत सरकार का मालिकाना सौंपा था । कलक्टर ने उनके दावे को खारिज करते हुए राजदरभंगा के तत्कालीन अधिकार को समाप्त कर दिया ।

1807 ई० में माधव सिंह के मृत्यूपरांत छत्र सिंह राजा बने। जिन्होंने 1814-15 ई० के नेपाली युद्ध में कंपनी सरकार को मदद कर अपनी स्थिति मजबूत बनायी। परिणामस्वरूप लॉर्ड मैरो (मार्क्विस हेस्टिंग्स) ने उन्हें महाराजा की उपाधि प्रदान की । बेतिया के राजा वीरकेश्वर सिंह ने भी नेपाल युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। 1816 ई० में उनके पुत्र आनंदकेश्वर सिंह राजा बने, जिन्हें लार्ड बेन्टिक ने महाराजा बहादुर की उपाधि प्रदान की ।

जिस समय तिरहुत पर 'ईस्ट इंण्डिया कंपनी' का अधिकार हुआ नेपाल की घाटी में गोरखा लोग राजा पृथ्वी नारायण के नेतृत्व में शासन कर रहे थे। उन्होंने 1762 में बंगाल के नबाव मीर कासिम की सेना को परास्त

किया।[129] इस विजय के बाद गोरखों ने अपनी स्थिति और मजबूत की तथा नेपाल तराई को 1768 ई० में जीत लिया। तिरहुत के कलक्टर के रिपोर्ट के अनुसार 1787 तथा 1813 के बीच गोरखों ने तिरहुत के करीब 200 गांवों पर कब्जा कर लिया।[130] 1815 में पुन: उन्होंने रिपोर्ट किया कि जमींदारों ने शिकायत की है कि गोरखों ने अनेक गांवों पर कब्जा करके संपत्ति को लूट लिया तथा आग लगा दी जिससे रैयत कर देने में असफल रहे।[131] गोरखों के बढ़ते प्रभाव को देखकर कंपनी तथा नेपाल के बीच मतभेद बढ़ता गया तथा वेलेसली के शासन काल में संधि विच्छेद संबंधी घोषणा हुई।[132] 1804 तथा 1812 के बीच ब्रिटेन तथा नेपाल के संबंध अच्छे नहीं रहे। 1808 में मोरंग जिला के गोरखा गवर्नर ने सहरसा जिला के भीमनगर थाना पर अधिकार कर लिया। ब्रिटिश अधिकारी बड़े क्रुद्ध हुए तथा तलवार के नोंक पर अपने अधिकार के वापसी हेतु सेना को भेजा । 1810 में गोरखों ने उस स्थान को छोड़ दिया, लेकिन बेतिया के सीमा पर कुछ स्थानों पर जबर्दस्ती कब्जा कर लिया । इस प्रकार 1814 ई० में गोरखों का सीमा 700 मील दूरी पर स्थित था ।[133] परिणामस्वरूप नेपाल-अंग्रेज युद्ध तिरहुत भूमि पर हुआ ।

1814 ई० में गोरखों ने परशराम थापा के नेतृत्व में तिरहुत पर आक्रमणकर करीब 22 गांवों पर कब्जा कर लिया जिससे गवर्नर-जेनरल हेस्टिंग्स ने उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। हेस्टिंग्स ने सतलज से कोसी के मध्य संपूर्ण नेपाली सीमा पर आक्रमण के लिए चार केन्द्र स्थापित किए । कर्नल ब्रैडशॉ को सारण के तरफ बढ़ने के लिए आदेश मिला।[134] कोसी नदी के पूरब में कैप्टन बैटेर लेटर को ब्रिटिश सीमा की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया गया ।[135] एडवार्ड रफेज ने अपने दल के साथ तराई एवं तिरहुत को छुड़ाने के लिए प्रस्थान किया। एक सैनिक टुकड़ी महलाई के निकट मेजरगंज में रखी गयी थी। गोरखों के युद्ध कौशल तथा अंग्रेजों की भौगोलिक समस्याओं के चलते अंग्रेजों को बहुत क्षति उठानी पड़ी तथा गोरखों ने अनेक स्थानों पर 1814-15 में उन्हें परास्त किया, लेकिन अप्रील 1815 ई० में जेनरल ऑक्टरलौंग ने बहादुर गोरखा सैनिक नेता अमरसिंह थापा को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर किया। गोरखों ने 1815 में सुगौली में एक संधि पर हस्ताक्षर किया ।[136] नेपाल सरकार ने बड़े ही आनाकानी

के पश्चात् संधि पर अमल किया तथा काठमांडू में अंग्रेजों को एक आवास देने पर सहमत हुए । संधि के अनुसार यह तय हुआ कि नेपाल को उन भू-भागों पर दावा छोड़ देना चाहिए जिसपर अंग्रेजों का कब्जा हो गया था। लेकिन इस संधि का कोई संतोषजनक परिणाम नहीं निकला ।[१३७] इस संधि के द्वारा दोनों का लोभ शान्त नहीं हुआ परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने मकवानीपुर के निकट कैम्प किया तथा यहां भीषण संघर्ष हुआ। कर्नल केल्ली ने हरिहरपुर पहाड़ी पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों का अभियान तभी रुका जब संधि पर दृढ़ीकरण का आश्वासन नेपाल की तरफ से दिया गया। 28 फरवरी 1816 को गोरखों को मकवानीपुर में परास्त किया गया। तत्पश्चात् सुगौली के संधि पर दोनों पक्ष सहमत हुए और शांति स्थापित हुई।

छत्र सिंह के समय में तिरहुत तथा नेपाल के बीच सीमा तय किया गया । 1817 में तिरहुत का कुछ तराई क्षेत्र नेपाल को दे दिया गया ।[१३८] मैथिली भाषी क्षेत्र को विभाजित कर नेपाल के सीमा के अन्तर्गत रखा गया। महाराज छत्रसिंह के मृत्युपरांत 1839 ई० में रूद्र सिंह राजा बने जिनकी मृत्यु 1850 में हुई । उनके बाद 1860 तक उनके ज्येष्ठ पुत्र महेश्वर सिंह राज किये। 1860 ई० में महेश्वर सिंह की मृत्यु हो गई जिस समय उनका ज्येष्ठ पुत्र मात्र दो वर्ष का था। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह उस समय नाबालिग थे इसलिए राज कोर्ट के अधीन हो गया। 1880 ई० में उन्हें राज्याधिकार समर्पित किया गया। 1898 ई० में उनकी मृत्यु हो गई जिसके बाद उनके अनुज रमेश्वर सिंह गद्दी पर बैठे । अपनी अल्पायु में ही महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने अनेक प्रतिष्ठित पदों को सुशोभित किया तथा भारतीय राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के मात्र तीन वर्ष के पश्चात् 1888 ई० में अंग्रेजों ने कांग्रेस को समाप्त करने के लिए पूरी व्यवस्था की तथा इलाहाबाद में अधिवेशन करने के लिए जमीन भी नहीं देने की व्यवस्था की । अगर दरभंगा के महाराज ने ऐन मौके पर मदद न की होती तो कांग्रेस को कोई जगह न मिल पाती। ऐन मौके पर उन्होंने लोथर कौंसिल खरीद लिया तथा उसे कांग्रेस के लिए दे दिया।[१३६] इस प्रकार कांग्रेस को बचाकर लक्ष्मीश्वर सिंह ने राष्ट्रीय आंदोलन को गति प्रदान की। उनके

पश्चात् उनके अनुज ने भी अनेक विकासात्मक कार्य किए तथा शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए । रमेश्वर सिंह के पश्चात् कामेश्वर महाराज बने जो जमींदारी की समाप्ति तक रहे । शिक्षा के क्षेत्र में उनकी भी अमूल्य देन है ।

इस प्रकार साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट जानकारी मिलती है कि जहाँ वैदिक काल में विदेह एक स्वतंत्र एवं सर्वशक्तिशाली राज्य था । वहीं बौद्ध काल में भारत के सोलह महाजनपदों में से एक वज्जी महाजनपद भी था। गुप्तकाल में इस भूमि को तीरभुक्ति कहा गया, जहाँ गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत एक प्रशासनिक केन्द्र था। यहां वैदिक काल में राजतंत्र था जिसके पतनोपरांत गणतंत्र स्थापित हुआ । आज समूचे संसार में भारत प्राचीनतम गणतंत्र होने का जो दावा करती है उस गणतांत्रिक व्यवस्था को जन्म देने वाली मिथिला की यही भूमि है । गणतंत्र के पतनोपरांत यहां सदियों तक बाहरी शासन रहा लेकिन ग्यारहवीं सदी के अंतिम दशक में पुनः कर्णाटवंशीय राजाओं की यहां स्वतंत्र शासन व्यवस्था स्थापित हुई । कर्णाट के बाद ओइनवार वंशीय शासन यहां स्थापित हुई । जिनके काल में मिथिला का सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ । इस काल में नारियों का भी शासन में अमूल्य भागीदारी बनी जो अपने आप में अनूठी है ।[१४०] मुगल काल में संपूर्ण तिरहुत को अनेक भागों में विभक्त कर दिया गया तथा तिरहुत सरकार का फरमान दरभगा के खड़ौरे वंशी राजाओं को दी गयी । अठारहवीं सदी के अन्त में तिरहुत सरकार पद से दरभंगा के राजाओं की मालिकाना समाप्त कर दी गयी तथा संपूर्ण तिरहुत क्षेत्र ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनाधीन हो गया एवं तिरहुत के राजा केवल जमींदार रह गए ।

हम देख चुके हैं कि भौगोलिक दृष्टि से मिथिला राज्य की सीमा- पश्चिम में गण्डक से पूर्व में बंगाल की सीमा तक तथा उत्तर में नेपाल की तराई से दक्षिण में गंग़ा नदी तक थी। समय-समय पर इसमें परिवर्तन होता रहा है । नेपाल की तराई क्षेत्र प्राचीन काल से मध्य काल तक अक्सर मिथिला में ही रही है तथा शासन व्यवस्था भी करीब-करीब समान रही है। अंग्रेजों के समय में नेपाल युद्ध के दौरान इस क्षेत्र में अक्सर संघर्ष होता रहा

जो सुगौली संधि के प्रावधानों को स्वीकार करने के पश्चात् ही थम सका। 1814 ई० में तिरहुत तथा नेपाल की सीमा भी अंग्रेजों ने तय की। वर्त्तमान समय में मिथिला एक सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में पहचानी जा सकती है। धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही इसका अमूल्य योगदान रहा है। कला के क्षेत्र में भी इसकी अनूठी महत्ता है । यहां की मिथिला चित्रकारी संसार के लिए अनुपम है । यही कारण है कि यहाँ की सांस्कृतिक विरासत आज समूचे संसार में सिर चढ़कर बोल रही है ।

प्राचीन काल से यहां अनेक भाषाओं तथा लिपियों का समागम होता रहा । वैदिक काल में जहां संस्कृत भाषा का यह केन्द्र था, वहीं बौद्ध काल में पाली भाषा यहां की लोकभाषा बन गयी थी जिसके माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार भी किया गया । पुनः गुप्तकाल में संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार हुआ तथा मध्यकाल में संस्कृत के साथ-साथ मैथिली भाषा का भी विकास हुआ । कर्णाटकाल में जहाँ मैथिली की प्रथम कृति लिखी गई, वहीं ओइनवार काल में महाकवि विद्यापति ने संस्कृत ग्रंथों के साथ-साथ मैथिली में पदावली की रचना की । अंग्रेजी शासनकाल में भी मैथिली की प्रतिष्ठा बनी रही तथा अनेक ग्रंथ एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा । लेकिन दुर्भाग्यवश स्वतंत्र भारत में इस भाषा के साथ राजनैतिक खेल खेला जा रहा है इस खेल में मिथिलावासी तथा बाहरी सभी शामिल रहे हैं । यद्यपि शत प्रतिशत मिथिलावासी किसी न किसी रूप में मैथिली भाषा-भाषी ही है लेकिन इस भाषा की उपेक्षा तथा अपमान करने का अवसर आने पर वे भी कभी नहीं चूकते । वैसे केन्द्र तथा राज्य सरकारें हमेशा ही इस भाषा के विरुद्ध रही है ।

आर्थिक समृद्धि

प्राचीन साक्ष्यों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि मिथिला आर्थिक रूप से एक समृद्ध राज्य था। जहाँ वैदिक साहित्यों में राजा जनक द्वारा गायों के सिंगों को सोने से मढ़वाकर दार्शनिकों को उपहार स्वरूप प्रदान करने की बात कही गयी है, वहीं महाकाव्यों में भी आर्थिक संपन्नता परिलक्षित होती है । बौद्ध साहित्यों में देश के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों के रूप में मिथिला का उल्लेख मिलता है जहाँ से अनेक व्यापारिक मार्ग गुजरते थे। गांधार

जातक के अनुसार मिथिला में अपार धन संपत्ति से परिपूर्ण कोषागार था।[१४१] लिच्छवि एवं गुप्त शासकों के प्रभुत्व का जिस तरह से उल्लेख मिलता है उससे स्पष्ट होता है कि उनके समय में भी मिथिला में आर्थिक समृद्धि रही होगी। गुप्तकाल को तो 'स्वर्ण काल' ही कहा गया है। पुरातात्विक साक्ष्यों से भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि प्राचीन काल में मिथिला में आर्थिक समृद्धि थी तथा अनेक उद्योग-धंधे स्थापित थे। पक्के इंटों से निर्मित किले, दीवारें, भवनें, मिट्टी एवं पत्थर के मूर्त्तियों पर उत्कीर्ण आभूषणों के चित्र, मुहरें, सिक्के, नगरों के ध्वंशावशेष, पत्थर एवं धातु के विविध औजारें आदि तत्कालीन आर्थिक समृद्धि एवं विकसित उद्योग धंधों के प्रमाण हैं। ज्योतिरीश्वर एवं विद्यापति की कृतियों में मध्यकालीन मिथिला की कृषि व्यवस्था एवं अन्य उद्योग धंधों का विस्तार से वर्णन मिलता है। शिवसिंह द्वारा सोने का सिक्का चलाना तथा विश्वासदेवी द्वारा चौदह सौ मीमांसकों को संरक्षण देना तत्कालीन मिथिला की आर्थिक संपन्नता का उत्कृष्ट प्रमाण है।

मिथिला में हमेशा ही कृषि की प्रधानता रही और इसीलिए कृषि आधारित उद्योग-धंधे का यहां प्रचलन रहा। यह परंपरा अंग्रेजों के समय में भी बनी रही। इस काल में यहां नील, चीनी, जूट, चावल एवं तेल आदि उद्योग का विकास हुआ। मिथिला का सबसे प्रमुख नगदी फसल नील था जिससे यहां के लोग अत्यधिक लाभान्वित हुए क्योंकि नील उद्योग इस भू-भाग पर एक प्रमुख उद्योग के रूप में विकसित हुआ। 1810 ई० में तिरहुत के कलक्टर ने इस उद्योग से संबंधित अपनी प्रतिवेदन में कहा है कि तिरहुत से प्रतिवर्ष कम से कम 10 हजार माउण्ड (Mound) नील कलकत्ता भेजा जाता है जहाँ से उसे यूरोप निर्यात किया जाता है। लगभग तीस से पचास हजार लोग- नील उद्योग से अपना जीवन निर्वाह करते हैं तथा सभी कारखानों से पच्चीस से तीस हजार नगद रुपए प्रतिवर्ष मजदूर एवं कृषक वर्ग पर खर्च किया जाता था।[१४२] कलक्टर के अनुसार तिरहुत के नील स्वामी प्रतिवर्ष करीब छः से सात लाख रुपये अपने काश्तकारों में बांटते थे।[१४३] सरकार द्वारा इस उद्योग को मदद दिया जाता था जिससे 1874 ई० में नील उद्योग की लगभग 126 फैक्ट्रियां मिथिलांचल में चल रही थी तथा लगभग 1 लाख एकड़ भूमि में नील उत्पादन किया जा रहा था। उस

समय देश की सबसे बड़ी नील की फैक्ट्री पंडौल (जिला मधुबनी) में स्थित थी जिसका भौगोलिक प्रसार करीब 300 वर्ग मील में था।[१४४] परन्तु अनेक कारणों से नील उद्योग का पतन प्रारंभ हो गया । ओ' मैली के अनुसार अंतिम बंदोबस्ती के समय में 52136 एकड़ अथवा पूर्ण उपजाऊ भूमि के 3 प्रतिशत भाग में नील का उत्पादन होता था, जबकि इस समय 28 मुख्य मिलें तथा इसकी 36 शाखाएं कार्यरत थीं । 1904 ई० में इसकी संख्या घटकर 24 हो गयी जिससे नील उत्पादन वाले भूमि की मात्रा में भी कमी आयी । जहाँ 1903-04 ई० 34000 एकड़ में इसका उत्पादन होता था वहीं 1906 ई० में बंगाल प्रेसीडेंसी में घटकर 28,400 एकड़ रह गया ।[१४५] 1911 ई० में नील की फैक्ट्रियों की संख्या 24 थी जिसमें 9605 पुरुष एवं 721 महिला को रोजगार प्राप्त था ।[१४६]

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में नील उद्योग करीब-करीब बंद हो गया जिसके स्थान पर चीनी उद्योग तीव्र गति से विकसित हुआ । 1895-96 ई० में दरभंगा जिला में 32 रिफाइनरी था। जहां केवल 43000 माउन्ड चीनी का उत्पादन होता था ।[१४७] धीरे-धीरे परिस्थिति में सुधार होने लगी तथा 1910-11 ई० में दरभंगा में पांच चीनी कारखाना काम करने लगा, जिसमें 190 लोगों को रोज़गार मिला।[१४८] बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ईख की खेती तथा चीनी उद्योग में इतनी वृद्धि हुई कि 1950 में इस क्षेत्र में 17 चीनी मिलें कार्यरत थी जिनमें 18 हजार मजदूर कार्यरत थे।[१४९] इस समय जूट उद्योग का भी विकास हुआ था। यहाँ तीन जूट मिलें काम कर रही थी- एक मुक्तापुर में तथा दो कटिहार में ।[१५०] इनमें करीब 27 हजार मजदूर कार्य कर रहे थे।[१५१] इसके अलावे पुर्णिया जिले में 28 छोटी-छोटी इकाइयां भी कार्यरत थीं जिनमें 643 लोगों को रोजगार प्राप्त था।[१५२] इस समय दरभंगा तथा कोसी क्षेत्र के एक बड़े भू-भाग पर जूट की पैदावार होती थी। इस तरह ईख एवं जूट की खेती कर यहाँ के किसान अत्यंत खुशहाल थे ।

मिथिला में चावल एवं तेल उद्योग भी विकसित हुआ । चावल के उत्पादन का मुख्य केन्द्र दरभंगा, जयनगर, पुपरी, सीतामढ़ी, बैरगिनिया, रक्सौल, नरकटियागंज, खड़गपुर आदि था । यहाँ तंबाकू सिगरेट उद्योग में

वृद्धि हुई । 1911 में मिथिला में दो तंबाकू कारखाने थे जिसमें 176 पुरुष एवं 14 महिला मजदूर कार्यरत थे।[१५३] इस क्षेत्र में बीड़ी बनाने का उद्योग एक महत्वपूर्ण उद्योग साबित हुआ । समस्तीपुर में बीड़ी बनाने का एक कारखाना था जिसमें 400 मजदूर कार्य करते थे।[१५४] कुटीर उद्योग भी विकसित हुए जिनमें शीशा, चूड़ी, ईंट, खपड़ा, तलवार, चाकू, सिन्दूर, बिस्कुट, दुग्ध उत्पाद, गुड़, हस्तकरघा, बाँस से निर्मित टोकरी, पान, नाव, धातु, कपड़ा, बुनाई, रंगाई तथा चित्रकारी, जूट का थैला, चटाई एवं कंबल, काष्ठकर्म, चर्म उद्योग, मधुमक्खी पालन एवं मधु उद्योग आदि प्रमुख थे ।[१५५] कागज उद्योग भी यहां परंपरागत रूप से चल रही थी जिसका मुख्य केन्द्र दरभंगा एवं पुर्णिया था ।[१५६] आगे चलकर कागज के कारखाने भी खोले गए। इस तरह प्राचीन समय से लेकर स्वतंत्रता की प्राप्ति तक मिथिला आर्थिक रूप से एक समुन्नत राज्य था तथा यहाँ विविध प्रकार के उद्योग-धंधों का विकास होता रहा ।

लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् सरकारी नीतियों के चलते क्रमशः यहां की अर्थव्यवस्था पतनोन्मुख होती चली गयी । उद्योग-धंधे चौपट होते गए। किसान एवं मजदूर खेती-बारी त्यागकर बेरोजगारों की भांति इधर-उधर भटकने लगे। बेरोजगारी इतनी बढ़ी कि जीवन-यापन के लिए लोग यहां से पलायन करने लगे । यहां के श्रमिकों की श्रम के बल पर देश के अन्य भागों में स्थापित कल-कारखानें तथा खेती-बारी अभूतपूर्व उन्नति करने लगे। फिर भी यहां के राजनेताओं की आंखें नहीं खुली और उन्होंने यहाँ की अर्थव्यवस्था, उद्योग-धंधों एवं कृषि कार्य को पुनर्स्थापित करने की दिशा में कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी । सच तो ये है कि इस क्षेत्र के विकास के बजाय वे अपनी व्यक्तिगत विकास में लगकर आर्थिक रूप से सम्पन्न बनते चले गए ।

सांस्कृतिक झलक :

अपनी उत्कृष्ट सांस्कृतिक परंपरा के चलते ही मिथिला की एक अलग पहचान है तथा आज भी एक सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में ही दुनिया में इसे मान्यता प्राप्त है । मिथिला की सांस्कृतिक परंपरा का यहाँ विस्तार से चर्चा करना संभव नहीं होगा लेकिन एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया

जाना परमावश्यक है ।

प्राचीन साक्ष्यों से विदित होता है कि मानव चिन्तन के इतिहास में मिथिला का विलक्षण स्थान रहा है । यह भूमि जनक, याज्ञवल्क्य, न्यायसूत्र के प्रणेता गौतम, वैशेषिक दर्शन के जनक कणाद, मीमांसा के प्रस्तोता जैमिनि तथा सांख्य दर्शन के संस्थापक कपिल का जन्मभूमि रहा है। जैन एवं बौद्ध धर्म तथा दर्शन का भी यह प्रसिद्ध गढ़ था।[१५७] कुमारिल भट, उद्योतकर, मंडन, वाचस्पति, उदयन, गंगेश, वर्द्धमान, पक्षधर, चण्डेश्वर, ज्योतिरीश्वर, विद्यापति, शंकर, चन्दा झा, गंगानाथ झा जैसे अनेकानेक विद्वान अपनी प्रखर प्रतिभा से इस भूमि को विभिन्न युगों में उद्भासित किये है।[१५८] जहाँ पुरुष दार्शनिको ने अपनी कृतियों से भारतीय दर्शन को संपुष्ट किया, वहीं यहाँ की विदुषियाँ भी उनसे कभी पीछे नहीं रही । मिथिला की विदुषी नारियों का इतिहास जितना उज्जवल है वह विश्व इतिहास में अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता । गार्गी, वाचक्नवी, मैत्रेयी, सुलभा, वेदवती, अहल्या, अम्बपाली, कुमारदेवी, भारती, लखिमा, विश्वासदेवी, लखिमा ठकुराइन, धीरमती, लक्षिमादेवी, चन्द्रकला जैसे अनेकानेक प्रसिद्ध नारियों ने अपनी अनूठी क्रिया-कलापों से तत्कालीन समाज को प्रभावित करती रही।[१५९]

उत्तर वैदिक काल में जहाँ मिथिला में वैदिक धर्म का वर्चस्व था वहीं महात्मा बुद्ध ने अपने समय में संपूर्ण मिथिलांचल का भ्रमण कर अपने धर्म का प्रचार-प्रसार किया। गुप्तकाल में अनेक शिवलिंगों की स्थापना की गई । गणेश की प्रतिमा भी अनेक स्थानों से मिली है । मध्यकालीन मैथिल विद्वानों के कृतियों से भी स्पष्ट होता है कि यहाँ शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य आदि की आराधना की जाती थी । कर्णाट-कालीन मूर्त्तियाँ इसके स्पष्ट प्रमाण हैं । मुसलमानों के आगमन के साथ ही यहाँ उनके धर्म का भी प्रचार-प्रसार हुआ । सबसे महत्वपूर्ण बात यहाँ यह है कि कुछ स्थानों पर बौद्ध तथा हिन्दू दोनों के ही मूर्त्तियां एक साथ मिलती है जो कर्णाट कालीन हैं ।[१६०] इससे यहाँ की धार्मिक सहिष्णुता का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है । वैसे महाकवि विद्यापति की कृतियों से भी उनकी धार्मिक सहिष्णुता व सर्वधर्म समभाव का उदाहरण मिलता है । साक्ष्यों से यह भी संकेत मिलता

है कि प्राचीनकाल में मैथिल दार्शनिक अपने तर्क से बौद्ध धर्म पर बार-बार प्रहार करते रहे। यही कारण है कि बौद्ध विद्वान धर्मकीर्त्ति ने गंगा से उत्तर के लोगों की निंदा की है लेकिन मध्यकाल तक यहाँ के ब्राह्मण भी बुद्ध को विष्णु का अवतार मानकर पूजने लगे । बाद में यहाँ अनेक देवताओं तथा जातीय देवताओं की पूजने की परंपरा बनी । गोरैया, सलहेश, शश्यामहाराज, दीना भदरी, लुकेश्वरी, कमला जैसे अनेकानेक देवताओं की पूजने की यहाँ प्रथा है ।

शिक्षा के क्षेत्र में मिथिला का योगदान अनुपम रहा है । ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, महाकाव्यों तथा पुराणों में यहाँ की उत्कृष्ट शिक्षाव्यवस्था की भरपूर प्रशंसा की गयी है । राजा जनक के राज-दरबार में दूर-दूर के शिक्षार्थी अध्ययन करने तथा शास्त्रार्थ करने यहां आया करते थे । इसी क्रम में व्यास पुत्र सुकदेव जी भी ब्रह्मविद्या विषयक ज्ञान राजा जनक से प्राप्त किया । महाभारत के दुर्योधन मिथिला में ही बलराम जी से गदा विद्या सीखने आए थे । गौतम आश्रम, वेदवती आश्रम, विभाण्डक आश्रम, श्रृष्यश्रृंग आश्रम, कपिल आश्रम आदि प्रमुख शिक्षा के केन्द्र थे । परवर्ती कालों में भी यहाँ गुरु शिष्य परंपरा कायम रही तथा प्रत्येक गुरु का घर ही शिक्षालय बन गया । बारहवीं सदी में गङ्गेश उपाध्याय ने नव्यन्याय की शिक्षा का एक केन्द्र करियन (समस्तीपुर) में स्थापित किया । जहाँ से शिक्षित होकर लोग नवद्वीप (नदिया, प० बंगाल) जाने लगे ।[१६१]

कर्णाट तथा ओइनवार काल में शिक्षा का अद्‌भुत विकास हुआ तथा अनेकानेक उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना हुई । मैथिल समाज में विद्वानों की जो प्रतिष्ठा थी वह अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता । विद्वता से प्रभावित होकर ही ओइनवार लोगों को मिथिला का शासन दिया गया । बाद में अकबर ने भी दरभंगा राज म०म० महेशठाकुर को सुपुर्दकर इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। महारानी विश्वासदेवी द्वारा चौदह सौ मीमांसकों का संरक्षण देना एक अनुपम घटना थी।[१६२] गुरु शिष्य परम्परा यहाँ प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक विद्यमान रही। यही कारण था कि सम्पूर्ण भारत में अनेकानेक शिक्षण संस्थानों का उदय तथा अस्त हुआ, लेकिन यहाँ के संस्थानों का अस्त नहीं हुआ बल्कि दिन-प्रतिदिन ये अबाध गति से

विकसित होते रहे । यहां प्रत्येक शिक्षकों का घर ही शिक्षालय बन गया। यही कारण था कि अनेक आक्रमणों के बावजूद भी इसे नष्ट नहीं किया जा सका।

शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी, जिसका प्रभाव मिथिला में स्वतंत्रता के समय तक विद्यमान रही। अंग्रेजों के समय में अनेकानेक संस्कृत विद्यालायों की स्थापना हुई जिसे सरकार तथा सम्पन्न लोगों द्वारा समर्थन दिया जाता रहा । इससे इसकी स्थिति सुदृढ़ बनी रही । दूर-दूर के शिक्षार्थियों को भी गांव-गांव में रहने तथा भोजन की व्यवस्था की जाती रही। लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् संस्कृत शिक्षा के साथ राजनैतिक खेल-खेला जाने लगा । सरकारी नीति के चलते संस्कृत शिक्षा में दिनानुदिन ह्रास होने लगा तथा नये-नये विद्यालयों को खोलकर आमदनी का स्रोत बनाने की परम्परा चली। पुराने विद्यालयों को सुचारू ढंग से चलाने की कोई स्थायी व्यवस्था नहीं की गई, बल्कि वित्तरहित शिक्षा नीति चलाकर संस्कृत शिक्षा को सदा के लिए नष्ट करने का षड्यंत्र रचा गया ।

प्राचीन साहित्यों, पुरातात्विक साक्ष्यों तथा स्थापित परम्पराओं से स्पष्ट जानकारी मिलती है कि मिथिला में आदि काल से लेकर वर्त्तमान काल तक विविध प्रकार की कलाओं का विकास होता रहा । विविध पुरातात्विक अन्वेषणों तथा उत्खननों से प्राप्त मूर्त्तियां, लघुमूर्त्तियां, मनके, मूर्त्तियों के फलकें, मुहरें आदि इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कर्णाटकालीन मूर्तियों की मिथिला में बहुलता मिलती हैं[१६२], जो तत्कालीन मूर्त्तिकला का उत्कृट नमूना है । दरभंगा राज द्वारा दरभंगा, राजनगर तथा अन्य स्थानों में निर्मित मंदिर एवं अन्य भवन तत्कालीन स्थापत्य कला की अनुपम देन हैं। दुर्भाग्य की बात है कि उन स्मारकों की रक्षा सरकार करने में अक्षम है तथा पुरातत्व विभाग भी उसकी उपेक्षा करती रही है । सारे स्मारक ध्वस्त होते चले जा रहे हैं तथा वास्तुकला की निशानी मिटती चली जा रही है ।

मिथिला की लोक-कलाओं ने तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। समाचकेवा, जट-जटिन, चित्रकारी आदि को बड़ी प्रसिद्धि मिली लेकिन इसके संरक्षण के लिए सरकार की ओर से कोई व्यवस्था नहीं की गई। मिथिला चित्रकारी को जापान में प्रतिष्ठा मिली जहाँ इसके लिए संग्रहालय

की स्थापना कर मिथिला के कलाकारों को सम्मानित किया गया। लेकिन यहाँ की सरकार को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सका कि इस दिशा में कुछ कर सके तथा कला की कीमत पाने के लिए एक स्थायी बाजार का निर्माण कर विदेशी पर्यटकों से इन्हें उचित पारिश्रमिक दिलवा सके । अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मिथिला पेंटिंग्स की मांग बढ़ जाने के कारण इसमें अनेक बाहरी कलाकार भी शामिल हो गए हैं जिसे इस चित्रकारी के मूल स्वरूप में विकृतियां भी आयी हैं ।

मिथिला के सांस्कृतिक धरोहर की उपेक्षा का दुष्परिणाम यह निकला कि वैशाली को छोड़कर एक भी ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक स्थल पर न ही पूर्ण उत्खनन कराया गया न ही अन्वेषण । परिणामस्वरूप यहां की धरोहर मिट्टी में ही दबी रह गयी तथा पर्यटन उद्योग का विकास न हो सका। बलिराजगढ़ (मधुबनी), कोपगढ़ (दरभंगा), पाण्डवस्थान (समस्तीपुर), नौलागढ़ एवं जयमंगलागढ़ (बेगूसराय), कटरागढ़ (मुजफ्फरपुर), बनगांव (सहरसा) जैसे दर्जनों[१६४] स्थलों की प्राचीनता नालंदा, विक्रमशिला, राजगीर, बोधगया आदि से किसी भी तरह कम नहीं है, किन्तु इसकी उपेक्षा हमेशा होती रही । महात्माबुद्ध द्वारा मिथिला के अनेक स्थलों का भ्रमण किया गया तथा इस क्षेत्र के अनेक स्थलों से बौद्ध मूर्त्तियाँ एवं पुरावशेष[१६५] मिलें हैं लेकिन उन्हें जगजाहिर नहीं होने दिया गया और बौद्ध स्थल, घोषित होने से वंचित रखा गया । अगर ऐसा होता तो यहाँ भी समृद्ध पर्यटन उद्योग विकसित होता । भारी विदेशी मुद्रा की आमदनी होती । प्राचीन मन्दिर, बड़े तालाब, चौर, नदी तथा दरभंगा राज के किले, मंदिर एवं अन्य संरचनाओं को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित किए जाते तो मिथिलांचल का परिदृश्य कुछ और ही होता ।

पृथक मिथिला राज्य परमावश्यक

अतएव भौगोलिक, आर्थिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से मिथिला के पास एक राज्य के लिए सारी योग्यताएं हैं । दुर्भाग्य की बात है कि भारत की स्वतंत्रता के समय ही इसे राज्य का दर्जा प्रदान नहीं किया गया । परिणामस्वरूप स्वतंत्रता से पूर्व तथा बाद के कुछ वर्षों में जो इसका आर्थिक ढ़ाचा था धीरे-धीरे वह भी नष्ट हो गया । शोषण तथा उपेक्षा इतनी

बढ़ती गई कि सारे उद्योग-धंधे समाप्त हो गए तथा उससे संबंधित कृषि का भी विनाश होता गया। प्रतिवर्ष बाढ एवं आकल के तांडव तथा राजनेताओं के खोखले आश्वासन, छलावा एवं शोषण यहां की नियति बन गई। अत: अगर शोषण तथा विकास को आधार मानकर राज्यों का निर्माण होता रहा है तो भी मिथिला राज्य का निर्माण परमावश्यक एवं समयानुकूल है। राज्य स्थापना के बाद ही इस क्षेत्र के सर्वांगीण विकास की बात सोची जा सकती है। कृषि, उद्योग-धंधा, पर्यटन, शिक्षा एवं संस्कृति के विकास से ही इस क्षेत्र की दुर्दशा तथा बेरोजगारी का अंत हो सकता है तथा लोगों का पलायन रुक सकता है और ये सभी बातें तभी संभव है जब इस क्षेत्र की जनता 'पृथक मिथिला राज्य' की स्थापना के लिए जागरूक तथा कटिबद्ध हों। ●

संदर्भ :

१. शतपथ ब्राह्मण, 1, 4.1.14.17.

२. जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, LXVI, 1899, 1, 88-9.

३. उपेन्द्र ठाकुर, मिथिलाक इतिहास, पटना, 1980, 8.

४. ऋग्वेद, 1, 53.7; 6.20.6.

५. एन्सिएन्ट इण्डिया, 303.

६. वैदिक इन्डेक्स, II, 298.

७. शतपथ ब्राह्मण, I, 4.1.10-19.

८. ब्रह्माण्ड पुराण, III, 64.1-2; वायुपुराण, 88.1-2.

९. भविष्य पुराण से उद्धृत शब्दकल्पद्रुम, III, 723 :

निमि: पुत्रास्तु तत्रैव मिथिर्नाम महान स्मृत: ।
प्रथमंभुजवलेर्येन त्रेहूतस्य पार्श्वत: ॥
निर्म्मितं स्वीया नाम्ना च मिथिलापुरमुत्तमम् ।
पुरीजननासामर्थ्यात् जनक: स च कीर्त्तित: ॥

१०. वाल्मीकीय रामायण, I, 71.4 : तस्य पुत्रो मिथिर्नाम मिथिला येन निर्मिता।; शिवकुमार मिश्र, 'वाल्मीकिक दृष्टि में मिथिला' खोज-खबरि, पटना, 1, 19.

११. वही, 1, 71.4; 67.8; VII, 45.4; महाभारत, III, 133.17; जातक, 539; ब्रह्मपुराण, 88, 22, 24; विष्णुपुराण, IV, 5.32; VI, 6.7; ब्रह्माण्ड पुराण, III, 64.24; वायु पुराण, 88.23; मार्कण्डेय पुराण, 13.11; स्कंद पुराण, V, 2.27.37.

१२. रामायण, VII, 57. 18-20 :

अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महातपा: ।
मिथिर्नाम महातेजास्तेनायं मैथिलोऽभवत् ॥

१३. जातक, 539 तथा 541; मज्झिमनिकाय, II, 7.74-83; दीपवंश, III, 34-35; महावंश, II, 10.
१४. दीघनिकाय अठ्ठकथा, II, 482; मज्झिमनिकाय अठ्ठकथा, 1, 184.
१५. महाभारत, VI, 6.12-13; 7.13-14; इस भूमि को भद्राश्व वर्ष कहता है (बी०सी०लॉ, 'मिथिला इन एन्सिएन्ट इण्डिया', इण्डिया एन्टीक, 224.)
१६. महावंश, II, 1-6; दीपवंश, III, 3-9.
१७. मज्झिम निकाय, 1. 225.
१८. दीघ निकाय, 2, 235.
१९. डी० एस० त्रिवेद, हिस्ट्री ऑफ प्री-मौर्यन बिहार, 82.
२०. वृहद् विष्णुपुराण, 2, 6-8 : मिथिला नाम नगरी तत्रास्ते लोकविश्रुता:।
२१. वही, 2, 12 : मिथिला तैरभुक्तिश्च वैदही नैमकाननम् ।
ज्ञानक्षेत्रं क्रियापीठं स्वर्णलाङ्गल पद्धति: ।
जानकीजन्मभूमिश्च निरपेक्षा विकल्मषा ।
रामानन्दकरी विश्वभाविनी नित्यमङ्गला ॥
(इस विवरण से संकेत मिलता है कि मिथिला नाम का प्रयोग नगर तथा राज्य दोनों के लिए ही किया गया है । वैसे उपर्युक्त नामों में से केवल मिथिला, तीरभुक्ति एवं विदेह ही प्रचलित थे।)
२२. रामायण, 1, 49.9-16.
२३. महावस्तु, III, 172; दिव्यावदान, 424.
२४. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1903-04, 109 : तीरभुक्तौ वैशालीतारा ।
२५. उपेन्द्र झा, मिथिलापुरी का अभिज्ञान, 20.
२६. वृहद्विष्णुपुराण, मिथिला महात्म्य, 2.5.
२७. वर्णरत्नाकर, कलकत्ता, 1940, 28 ख.
२८. पुरुष परीक्षा, गीतविद्यकथा ।
२९. पदावली : शिवसिंह मिथिला भूपे ।
३०. शतपथ ब्राह्मण, 1, 4.1.10-19.
३१. श्याम नारायण सिंह, हिस्ट्री ऑफ तिरहुत, कलकत्ता, 1922, 1.
३२. मज्झिम निकाय, 1, 225.
३३. हेमचन्द्र राय चौधुरी, प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1980, 93.
३४. अंगुत्तर निकाय, 1. 26; III, 49; IV, 208.
३५. रायचौधरी, पूर्वोक्त, 94.
३६. परमेश्वर झा, मिथिला तत्व विमर्श, पटना, 1977, 37.
३७. शक्तिसंगमतंत्र, 7.27 : गण्डकी तीरमारभ्य चम्पारण्यान्तकं शिवे।
विदेह भू:समाख्याता तैरभूक्तयमिध:सतु ॥

३८. श्यामनारायण सिंह, पूर्वोक्त, 3 :
गङा बहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कौशिकी धारा ।
पश्चिम बहथि गण्डकी उत्तर हिमवत् वन विस्तारा ।।
३९. जी०पी० मलालशेखर, डिक्सनरी ऑफ पालि प्रोपरनेम्स, I, 880; प० झा, पूर्वोक्त, 37.
४०. पी. सी. घोष, ए कम्प्रीहेन्सिव ट्रीटाइज़ ऑन नॉर्थ बिहार फ्लड प्रॉब्लेम्स, पटना, 1948, 96.
४१. वही, 98.
४२. पुर्णियां डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, 27.
४३. पी. सी. घोष, पूर्वोक्त, 110; योगेन्द्र मिश्र, हिस्ट्री ऑफ विदेह, पटना, 1979, 7-8.
४४. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, VIII, 1907, 187.
४५. शिवकुमार मिश्र, एजुकेशनल आइडियाज एण्ड इन्स्टीच्यूसन्स इन एन्सिएन्ट इण्डिया, नई दिल्ली 1998, 9.
४६. जातक, 489.
४७. वही ।
४८. वही, 406.
४९. वही, III, 365.
५०. वही, VI, 32.
५१. वृहद्विष्णुपुराण, 2.5; कौशिकी तु समारभ्य गण्डकी मधिगम्यवै ।
योजनानि चतुर्विंशद्यायाम: परिकीर्त्तित: ।।
गङ्गा प्रवहमारभ्य यावत् हैमवतं वनम् ।
विस्तार षोडश: प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दन ।।
५२. दीघअठ्ठकथा, II, 13.
५३. जातक, 539.
५४. परमेश्वर झा, मिथिला तत्व विमर्श, 37. (वृहद्विष्णु पुराण के आधार पर मिथिला की लंबाई 96 कोश तथा चौड़ाई 64 कोश कहा गया है)
५५. जे. ए. डाउसन, क्लासिकल डिक्सनरी ऑफ हिन्दू मायथोलोजी, लन्दन, 1960, 313.
५६. कौशीतकि उपनिषद्, I, V, 1; वृहदारण्यक उपनिषद्, II, 1, 1; IV, 1, 11: महाभारत, शान्ति पर्व, CCCXXVII, 12215.25.
५७. भागवत, IX, 13.
५८. द्रष्टव्य, शिवकुमार मिश्र, उपरोक्त, प्रथम अध्याय ।
५९. द्रष्टव्य, शिवकुमार मिश्र, 'वीमेन स्कॉलर्स इन एन्सिएन्ट मिथिला', डाइमेन्सन ऑफ इन्डियन वूमेनहुड, अलमोरा, जिल्द, 3, 159.
६०. मज्झिम निकाय, II, 72; दीपवंश, III, 9.29. 35.

६१. जातक, VI, 220.
६२. वही, VI, 30.
६३. वही, III, 378.
६४. वही, II, 39.
६५. वही, सं० 406.
६६. वही, 532.
६७. साधीन जातक, सं० 494.
६८. जातक, 489.
६९. राय चौधरी, पूर्वोक्त, 65.
७०. मज्झिम निकाय, II, 82; निमिजातक ।
७१. राय चौधुरी, पूर्वोक्त, 66.
७२. शिव कुमार मिश्र, 'पुरातत्व की दृष्टि में मिथिलापुरी : बलिराजगढ़', दि जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी,अंक 76-78, 117; 'बलिराज गढ़ : प्राचीन मिथिलापुरी', बिहार : स्थानीय इतिहास एवं परम्परा, जानकी प्रकाशन, पटना, 1998, 241.
७३. रायचौधुरी, पूर्वोक्त, 66.
७४. परिशिष्टपर्वन, VI, 34; 175, 180; राय चौधुरी, पूर्वोक्त, 162.
७५. राधाकृष्ण चौधरी, बिहार दि होमलैण्ड ऑफ बुद्धिज्म, पटना, 1956.
७६. कौटिल्याज अर्थशास्त्र, शामशास्त्री, 455.
७७. रिपोर्ट ऑफ दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, जिल्द-1, 64-74.
७८. राधाकृष्ण चौधरी, मिथिलाक संक्षिप्त राजनैतिक इतिहास, दरभंगा, 1961, 10.
७९. बी० सी० लॉ, सम क्षत्रिय ट्राइब्स, 116.
८०. वही ।
८१. होमेज टु वैशाली, पृ० 70; उपेन्द्र ठाकुर, मिथिलाक इतिहास, 94.
८२. शिवकुमार मिश्र, 'हर्षकालीन मिथिला', प्रज्ञाभारती, काशी प्रसाद जयसवाल शोध संस्थान, पटना, अंक-, IX, 117-125.
८३. वही, 118.
८४. वही; त्सेपन डब्ल्यू० डी० सकपा, तिब्बतः ए पोलिटिकल हिस्ट्री,येल युनिवर्सिटी प्रेस, 1973, 28; वी० ए० स्मिथ, देवकर, 304.
८५. आर. सी. मजुमदार, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पटना, 1971, 92.
८६. श्यामनारायण सिंह, पूर्वोक्त, 54.
८७. रा० कृ० चौधरी, मिथिलाक राजनैतिक इतिहास, 19-20.
८८. वही ।
८९. इन्स्क्रिप्सन्स ऑफ प्रतापमल्ल ऑफ नेपाल (1648 ई०) : आसीत् श्री सूर्यवंशे रघुकुल नृपजो रामचन्द्रो नृपेशः तद्वंशो नान्यदेवोऽवनिपतिर भवत्तसुतः गंगदेवः । तत्पुत्रोऽभून्नृसिंहोः नरपतिरतुलस्तुस्त्सुतो रामसिंहः तज्जः श्री शक्ति

संहोधरणिपतिरभत् भूपभूपाल सिंह तस्मात्कर्णाट चूड़ामणि विहरियुत्सिंह देवोस्यवंशे ।

९०. मुजफ्फरपुर जिला गजट, 18.
९१. तारिखे-फिरोजशाही, इलिएट, जिल्द-3, 234; ज्योतिरीश्वर, धूर्त्तसमागम नानायोधनिरूद्ध निर्जित सुरत्राणात्र सद्वाहिनी । नृत्यद्भीमकबन्धमेलकदलत भूमि भ्रमद्भुधरः ।। अस्ति श्री हरिसिंहदेव नृपतिः कर्णाट चूड़ामणिः। दृप्यत्पार्थिव सार्थमौलि मुकुटन्यस्तांध्रि पंकेरूहः ।।
९२. ओल्डफील्ड़, स्केचेज फ्रॉम नेपाल, जिल्द-1; रा० कृ० चौधरी, पूर्वोक्त, 29.
९३. शिवकुमार मिश्र, एजुकेशनल आइडियाज एण्ड इन्स्टीच्यूसन्स इन एन्सिएन्ट इण्डिया, 116-117.
९४. जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 4.21.
९५. वही; उपेन्द्र ठाकुर, मिथिलाक इतिहास, 181.
९६. उपेन्द्र ठाकुर, पूर्वोक्त, 182.
९७. रा० कृ० चौधरी, पूर्वोक्त, 32.
९८. इण्डियन एण्टीक्वेरी, जिल्द-XIV, 192; XXVIII, 57; ज० ए० सो० बं०, LXVIII, भाग-1, 96; ओइनवार वंश के संस्थापक कामेश्वर ठाकुर थे।
९९. रा० कृ० चौधरी, पूर्वोक्त, 33.
१००. वही ।
१०१. विद्यापति पदावलीः राउभोगीसर गुणनागरारे पद्मा देवि रमाने ।
१०२. कीर्त्तिलता, विद्यापति, द्वितीय पल्लव ।
१०३. वही, पल्लव-4.
१०४. जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, 13, 297-98; 11, 112-3.
१०५. ज० ए० सो० बं०, 1915, 417.
१०६. पुरुष परीक्षा, प० 1.
१०७. ज० ए० सो० बं०, 1915, 417.
१०८. इण्डियन एन्टीक्वेरी, 1899, 57.
१०९. वही, 14, 190.
११०. वही; उपेन्द्र ठाकुर, उपरोक्त, 193.
१११. वही; परमेश्वर झा, पूर्वोक्त, 156; ज० बि० ओ० रि० सो०, 11, 115.
११२. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुएल रिपोर्ट, 1913-14; श्याम नारायण सिंह, पूर्वोक्त, 73.
११३. द्रष्टव्य, शिवकुमार मिश्र, 'वीमेन स्कॉलर्स ऑफ मेडियावल मिथिला', नारी, दिल्ली, 2000, 3, 102.
११४. वही ।
११५. ज० ए० सो० बं०, XI (एन० एस०), 430-31; इर्क्सिन, बाबर एण्ड

हुमायुँ, जिल्द-1, 541.
११६. रास बिहारी दास, मिथिला दर्पण, 62.
११७. श्याम नारायण सिंह, पूर्वोक्त, 94; आइने-अकबरी, जैरेठ, 2, 43, 88.
११८. वही, 93.
११९. वही, 211-12.
१२०. रियाज-उस-सलातिन, 122; रा० कृ० चौधरी, पूर्वोक्त, 40.
१२१. वही, 50; वही, 40.
१२२. ज० बि० रि० सो०, 32, 59.
१२३. वही ।
१२४. रियाज-उस-सलातिन, 36; ओ' मैले पुर्णिया गजेटियर ।
१२५. वही, 296; रा० कृ० चौधरी, पूर्वोक्त, 43-44.
१२६. रा० कृ० चौधरी, पूर्वोक्त, 45; श्यामनारायण सिंह, पूर्वोक्त, 221.
१२७. वही, 45.
१२८. श्याम नारायण सिंह, पूर्वोक्त, 222.
१२९. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, V. 377.
१३०. मुजफ्फरपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, 152.
१३१. वही ।
१३२. थौर्नटन, हिस्ट्री ऑफ दि ब्रिटिश इम्पायर इन इण्डिया, IV, 253.
१३३. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, V. 378.
१३४. थौर्नटन, पूर्वोक्त, 257.
१३५. वही, 260.
१३६. रा० कृ० चौधरी, हिस्ट्री ऑफ बिहार, पटना, 1958, 250.
१३७. थौर्नटन पूर्वोक्त, 297, 298, 301, 302.
१३८. रा० कृ० चौधरी, खण्डबलाज ऑफ मिथिला, ज० बि० रि० सो०, XLVIII, 2, 62.
१३९. इलाहाबाद कांग्रेस में स्वागत समिति के अध्यक्ष पं० अयोध्या नाथ का भाषण, वी० पी० मजुमदार एवं बी० पी० मजुमदार, कांग्रेस एण्ड कांग्रेस मैन इन दि प्री-गांधियन इरा, 1885-1917, कलकत्ता, 1967, 16.
१४०. शिवकुमार मिश्र, 'वीमेन स्कॉलर्स ऑफ मेडियेवल मिथिला', नारी, नई दिल्ली, 2000, अंक-1, 99-110.
१४१. जातक, 406.
१४२. बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर दरभंगा, कलकत्ता, 1907, 97.
१४३. वही ।
१४४. वही, 98.
१४५. वही, 99.

१४६. दरभंगा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, स्टेटिस्टिक्स 1900-1901 टू 1910-1911, पटना, 1915, 52.
१४७. ओ' मैली, पूर्वोक्त, 93.
१४८. दरभंगा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : स्टेटिस्टिक्स 1900-1901 टू 1910-1911, 52.
१४९. शैलेन्द्र कुमार झा एवं भानू झा, दि इकोनोमिक हेरीटेज ऑफ मिथिला, पटना, 1996, 147.
१५०. लक्ष्मीनारायण सिन्हा, वेल्थ ऑफ मिथिला, दरभंगा, 1957, 38.
१५१. वही ।
१५२. शैलेन्द्र कुमार झा एवं भानू झा, पूर्वोक्त, 151.
१५३. दरभंगा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : स्टेटिस्टिक्स 1900-1901 टू 1910-1911, 52.
१५४. पी० सी० राय चौधरी, बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : दरभंगा, पटना, 1964, 249.
१५५. वही; शैलेन्द्र कुमार झा एवं भानू झा, पूर्वोक्त, 113-130.
१५६. बुकानन, पुर्णिया रिपोर्ट, पटना, 169; शैलेन्द्र कुमार झा एवं भानू झा, पूर्वोक्त, 152.
१५७. उपेन्द्र ठाकुर, हिस्ट्री ऑफ मिथिला, दरभंगा, 1956, 1.
१५८. द्रष्टव्य, शिव कुमार मिश्र, एजुकेशनल आयडियाज एण्ड इन्स्टीच्यूसन्स इन एन्सिएन्ट इन्डिया, अध्याय, IV.
१५९. द्रष्टव्य, शिव कुमार मिश्र, 'बूमेन स्कॉलर्स ऑफ एन्सिएन्ट मिथिला', डाइमेन्सन्स ऑफ इण्डियन वूमनहुड, III, 159 तथा 'वूमेन स्कॉलर्स ऑफ मेडियेवल मिथिला', नारी : फैसेट्स ऑफ इण्डियन वूमनहुड, दिल्ली, 2000, I, 102.
१६०. द्रष्टव्य, शिव कुमार मिश्र, पूर्वोक्त, एपेन्डिक्स ।
१६१. वही ।
१६२. राधा कृष्ण चौधरी, मिथिला इन दि एज ऑफ विद्यापति, वाराणसी, 1976, 223-24.
१६३. शिव कुमार मिश्र, पूर्वोक्त, एपेन्डिक्स ।
१६४. शिव कुमार मिश्र, 'मिथिला के बौद्ध स्थल, **मिथिला : संस्कृति एवं परम्परा,** पटना, 2001, 209-224.
१६५. वही ।

अनुक्रमणिका

अकबर, 28, 30, 39
अजातशत्रु, 16, 17, 18
अनिरुद्ध, 17
अम्बपाली, 38
अमर सिंह थापा, 31
अर्जुन या अरुणाश्व, 19, 20
अररिया, 12
अरिठ्ठ जनक, 15
अलाउद्दीन, 27
अलाहवर्दी खाँ, 29
अलीवर्दी, 29
अशोक, 17
असलान, 25
असूरगढ़, 17
अहल्या, 38
आनंदकेश्वर सिंह, 30
आपण, 17
ओइन ठाकुर, 24
ओइनवार, 24, 25, 26, 27, 33,
ओइनी, 24, 25
ऑक्टरलौंग, 31
औरंगजेब, 28, 29
अंगति, 15
अंगुत्तराप, 17
अंधराठाढ़ी, 21
इत्सिंग, 19
इन्द्र, 9
इब्राहिम लोदी, 27
इब्राहिम शाह, 25
इमादपुर शिलालेख, 20
इलाहाबाद, 32
इक्ष्वाकु, 9
इंगलैंड, 13
उदयन, 38
उदयिन, 17
उद्योतकर, 38
उर्वशी, 9
एडवार्ड रफेज, 31
ऋष्यश्रृङ्ग, 39
कटरागढ़, 10, 17, 40
कटिहार, 36
कणाद, 38
कर्णाट, 33
कन्दर्पीघाट, 29
कन्दहा, 26
कन्नौज, 22, 23
कपिल, 38, 39
कमला, 39
कर्नल केल्ली, 32
कराल (कलार) जनक, 15
करियन, 23, 39
काठमांडू, 32
कामेश्वर जीवगुप्त, 10
कामेश्वर ठाकुर, 22, 24
कामेश्वर सिंह, 32
काशी, 7
कांग्रेस, 32
कीर्त्तिसिंह, 25
कुमारदेवी, 19, 38
कुमारिलभट, 38
केशवकायस्थ, 27
कोपगढ़, 46
कोल्हुआ, 17
कोशल, 7, 11
कोसी, 11, 12, 13, 31, 36
कौटिल्य, 17, 18
कौशिकी, 12, 13, 21
खड्गपुर, 36
खड़ौरे, 28, 33
खान-ए-आजम, 28
गज्जन, 26
गजरथपुर, 25
गजसिंह, 28
गणपति ठाकुर, 10
गणेश्वर ठाकुर, 25
गरुड़नारायण, 25
गार्गीवाचक्नवी, 38
गियासुद्दीन तुगलक, 24
गोनू झा, 25
गोपाल ठाकुर, 28
गोरखा, 30, 31
गौरैया, 39
गौड़, 23, 26
गौड़ेश्वर, 26
गौतम, 9, 16, 38, 39

गंगदेव, 21, 22
गंगा, 9, 11, 12, 13, 17, 24, 33, 39
गंगानाथ झा, 38
गंगेश, 23, 38, 39
गंडक, 11, 12, 13, 20, 21, 24, 33.
चकवार, 29
चण्डेश्वर, 10, 22, 38
चन्दा झा, 12, 38
चन्द्रकला, 38
चन्द्रगुप्त, 18
चन्द्रगुप्त प्रथम, 19
चन्द्रगुप्त द्वितीय, 19
चन्द्रधारी संग्रहालय 17
चंद्रसिंह, 27
चम्पा, 12, 13
चम्पारण, 13, 17, 27, 28
चेटक, 16
चेल्लना, 16
छत्र सिंह, 30, 32
जट जटिन, 40
जनक, 7, 8, 9, 39
जनक वंश, 14, 15, 21
जयन्त, 8
जयनगर, 36
जयमंगलागढ़, 17, 40
ज्योतिरीश्वर, 10, 23, 35, 38
जानकीजन्म भूमि, 10
जाफर खां, 29
जैमिनि, 38
जौनपुर, 26
झंझारपुर, 30
तोडरमल, 28
डेनमार्क, 13
दरभंगा, 13, 17, 28, 29, 30, 35, 36, 39, 40
दाउदखां, 28
दीना-भदरी, 39
दुरजन सिंह, 29
दुर्योधन, 39
देवकुली (देकुली), 25
देवसिंह, 25, 26
धरमपुर, 29
धर्मकीर्ति, 39
धर्मस्वामी, 22
धीरमती, 26, 27, 38
धीरसिंह, 27
ध्रुवसिंह, 29
नरकटियागंज, 36
नरपति ठाकुर, 29
नरसिंह, 26, 27
नरसिंह देव, 22, 26
नरेन्द्र सिंह, 29, 30
नवद्वीप (नदिया), 23, 29
नसरतशाह, 27
नान्यदेव, 21
नामिसाप्य, 8
नारायण ठाकुर, 28
नालंदा, 40
निग्रहपाल, 20
निमि, 8, 9, 10,15
नुसेरी खां, 29
नेपाल, 11, 13, 17, 18, 20, 21, 22, 23, 24, 28, 29, 31, 32, 33
नेपाली युद्ध, 30
नौलागढ़, 17, 20, 40
नंदनगढ़, 12
पद्मसिंह, 26
पद्मावती, 30
पनार, 12
पब्बतरठ्ठ, 11
परमानंद ठाकुर, 28
परसराम थापा, 31
पक्षधर, 38
पाटलिपुत्र, 17
पाण्डवस्थान, 18, 40
पुपरी, 36
पुब्बविदेह, 9
पुरुषोत्तम ठाकुर, 28
पूर्णिया, 12, 13, 17, 28, 36
पंचमहला, 29
पंजीव्यवस्था, 22
पंडौल, 36
प्रताप सिंह, 30
प्रयागप्रशस्ति, 19
पृथ्वीनारायण, 30
फाहियान, 19

फिदाय खां, 29
फिरोजशाह तुगलक, 24
बटुदास, 21
बनगांव, 17, 20, 40
बलरामजी, 39
बलान, 12, 29
बलिराजगढ, 15, 17, 40
बसाढ़, 10, 19
बहेड़ा, 19
बाबर, 27
बिम्बिसार, 16
बिस्फी, 26
बीरकेश्वर सिंह, 30
बुद्ध, 17, 40
बुद्धघोष, 14
बेगूसराय, 29
बेतिया, 29, 30, 31
बेन्टिक, 30
बेल्जियम, 13
बेलही, 12
बैटेर लेटर, 31
बैरगिनियां, 36
ब्रैडशॉ, 31
बोधगया, 40
भवसिंह, 25, 26
भवारा, 28, 30
भागलपुर, 13
भारती, 38
भास्कर वर्मन, 20
भीट-भगवानपुर, 21
भीमनगर, 31
भूपसिंह, 29
भैरव सिंह, 27
भोगीश्वर,-24
भोगीश्वर ठाकुर, 25
मकवानीपुर, 32
मखादेव, 9, 15
मगध, 9, 11, 16, 18, 23
मधुबनी, 15, 22, 36
मन्धाता, 9
मल्ल, 11
मल्लदेव, 21, 22
महागोविन्द जोतिपाल, 10
महाजनक, 15
महादेवी प्रभुदेवी, 18
महानंदा, 11, 12
महापणाद, 15
महावीर, 16
महासम्मत, 9
महिनाथ ठाकुर, 28, 29
माधव-सिंह, 30
मानसिंह, 28
मासूम खाँ, 29
मिथि, 9, 10
मिथुलु, 10
मिरजा खां, 29
मिसरू मिश्र, 27
मित्रावरूण, 9
मीर कासिम, 30
मुक्तापुर, 36
मुंगेर, 13
मुजफ्फरपुर, 10
मुहम्मद तुगलक, 23
मेजरगंज, 31
मैनाक पर्वत, 7
मैरो (मर्क्विसहेस्टिंग्स), 30
मैत्रेयी, 38
मोरंग, 28, 31
मंडन, 38
याज्ञवल्क्य, 37
रक्सौल, 36
रमेश्वर सिंह, 32
राघव सिंह, 33
राजगीर, 40
राजगृह, 9, 17
राजनगर, 39
राजसिंह, 25
रामगुप्त, 10
रामनारायण, 29
रामपुरवा, 17
रामभद्रदेव, 27
रामसिंह, 22
रामेश्वर, 25
रूद्रसिंह, 32
रूद्रसेन, 18
रेणु, 9, 10

लखिमा, 25, 26, 38
लखिमा ठाकुराइन, 38
लक्ष्मीनाथ देव, 27
लक्ष्मीश्वर सिंह, 32
लक्षिमा देवी, 38
लालकवि, 29
लिच्छवय:, 19
लिच्छवि, 11, 15, 16, 17, 19
लुकेश्वरी, 39
लोथर कौंसिल, 32
लौरिया अरेराज, 17
लौरिया नंदनगढ़, 17
वज्जि, 10, 11, 16, 17, 33.
वर्द्धमान, 38
वर्द्धमान उपाध्याय, 24
व्यास, 39
वररुचि मिश्र, 19
वसिष्ठ, 9
वांगह्वेन-त्से, 20
वाचस्पति, 38
विक्रमशिला, 40
विक्रमांक चालुक्य, 21
विदेघमाथव, 8, 11
विदेहदत्ता, 16
विदेहरठ्ठ, 9
विदेह राजवंश, 15
विद्यापति, 10, 22, 25, 26, 34, 35, 38.
विभाण्डक आश्रम, 39
विशाला नगरी, 16
विष्णुपति, 29
विश्वास देवी, 26, 35, 38, 39
वीर सिंह, 25
वेदवती, 38, 39
वेलेसली, 31
वैजयन्त, 8
वैदेह, 15
वैदेही, 10, 16, 17
वैशाली, 11, 16, 17, 18, 19
वृजि, 6, 10, 11, 15
शक्ति सिंह, 22
शर्कीवंश, 36
शमसेर खाँ, 29
शमसुद्दीन इलियास, 24
शश्यामहराज, 29
शशांक, 9
शाहनवाज खां, 29
शिवसिंह, 25, 28, 35
शेरशाह, 27
शंकर, 38
श्रीधर दास, 21
श्रीलंका, 13
सकलीगढ़, 27
सदानीरा, 8, 11
समस्तीपुर, 23, 24, 37
समा-चकेवा, 40
सम्सुद्दीनपुर, 24
समुद्रगुप्त, 19
सलहेस 39
सहरसा, 39
स्रोंग-चने-गम्पो, 20
साकीन, 15
सिमरांव, 21, 23, 28
सीतामढ़ी, 36
सीरध्वज, 14
सुकदेव, 39
सुगांव, 24
सुगौना, 22
सुगौली, 31, 32, 34
सुधाकर, 26
सुन्दरठाकुर, 28
सुभंकर ठाकुर, 28
सुभंकरपुर, 28
सुमेरू पर्वत, 9
सुलभा, 38
संकाश्या, 7
हरिसिंह, 26
हरिसिंह देव, 22, 23, 24
हरिहरपुर, 32
ह्वेनसांग, 19
हर्षवर्द्धन, 19
हाजीपुर, 17, 24, 27, 28, 30
हिन्दाल, 27
हीरा, 27
हुमायुं, 27



डा० शिव कुमार मिश्र

मिथिलांचल के मधुबनी जिलान्तर्गत शतधरा गांव में 26 दिसंबर 1965 ई० को जन्मे लेखक को आरंभ में परंपरागत संस्कृत साहित्य की शिक्षा अपने पितामह स्व० पं० चन्द्र नारायण मिश्र, जो अपने समय में एक प्रसिद्ध विद्वान एवं कर्मकाण्डी थे, से मिली ।

लेखक को प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों में तथा उच्च शिक्षा ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय एवं मगध विश्वविद्यालय में मिली। डाक्टरेट की उपाधि पटना विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई ।

इनकी **एजुकेशनल आयडियाज एण्ड इन्स्टीच्यूशन्स इन एन्सिएण्ट इंडिया (विथ स्पेशल रेफरेन्स टू मिथिला)** नामक एक पुस्तक 1998 में दिल्ली से प्रकाशित हुई । बी० पी० कोइराला इंडिया-नेपाल फाउन्डेशन, शाही नेपाली राजदूतावास की एक शोध कार्य योजना **पालि साहित्य के आधार पर मिथिला का भूगोल** पर इन्होंने काम किया है।

मिथिला के इतिहास, भूगोल, संस्कृति एवं परंपरा से संबंधित दर्जनों शोध-आलेख विभिन्न शोध पत्रिकाओं एवं अन्य राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं । इसी विषय से संबंधित अनेक वार्त्ता भी विगत एक दशक से आकाशवाणी, पटना से प्रसारित होते रहे हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त शोध संस्थान **बिहार रिसर्च सोसाइटी, संग्रहालय भवन, पटना** में **रिसर्च एसोसिएट** के पद पर रहते हुए मिथिला से संबंधित विविध शोध क्रियाकलापों में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।